भूमिका

"विश्व की महानतम विभूतियाँ काल प्रसूत होती हैं" यह एक निर्विवाद सत्य है। जब थोथी रूढ़ियाँ, व्यर्थ के वाह्याडम्बर तथा समाज विरोधी तत्व अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तब समाज की सुख-शान्ति और व्यवस्था की रक्षा करने किसी न किसी महापुरुष का आविर्भाव होता है। यह ऐतिहासिक सत्य भी है। भगवान बुद्ध तथा शंकराचार्य आदि ऐसे ही काल-पुरुष हैं। उनके आविर्भाव का कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ ही थीं। कर्म-काण्ड अपनी चरम सीमा को पहुँच गया था, समाज भीत, त्रस्त तथा विक्षुब्ध , वह अपने किसी अज्ञात उद्धारक की बाट जोह रहा था। इसी समय [illegible]वान बुद्ध अपनी करुणा पताका फहराते हुए आए और सारा देश [illegible] पीछे हो लिया। विश्व में सम्भवतः महात्मा बुद्ध के सदृश लोकप्रिय [illegible] दूसरा नहीं हुआ। उनके समय में ब्राह्मणों के पारिभाषिक नियम एवं [illegible] क्लिष्ट तथा अव्यावहारिक साधनायें जन-जीवन से दूर जा रही थीं। [illegible]न बुद्ध ने धर्म का सम्बन्ध जीवन से जोड़ा और प्राणिमात्र के लिए अपने [illegible]के द्वार उन्मुक्त कर दिए। 'सर्वभूतों को आत्मवत्' देखने के सिद्धान्त को [illegible] बाद व्यावहारिक रूप देने वाले वे प्रथम महापुरुष थे। भगवान [illegible]के उपदेशों में एक ओर तो ब्राह्मणवाद के प्रति कटु आलोचना है, दूसरी [illegible] समाज हित के लिए समयानुकूल नवीन कार्यक्रम। डा० हजारीप्रसाद [illegible]दी का कथन है—"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके [illegible]योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, [illegible]साधनायें, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।" यह सत्य है कि समाज अपने संस्कारों को बिलकुल ही नहीं छोड़ सकता। लोकनायक सदैव जनता के प्राचीन संस्कारों का अधिकतम तथा उचिततम उपयोग करता है और नवीन बातों का सम्मिश्रण इस प्रकार करता

है कि समाज उसे विदेशी या संस्कार-बाह्य नहीं समझता। समाज उनके विचार टोह टटोल कर समझे बिना कोई व्यक्ति लोकनायक नहीं हो सकता, हृदय-शासक भले ही हो जाय। तलवार के बल पर विश्व-शासन की स्थापना करने वाले—दम्भ भरने वाले—लोकशासक कभी लोकनायक नहीं रहे। लोकनायक त्याग की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित रहते हैं, जनता उन्हें अपने हृदय में स्थान नहीं देती और उचित अवसर आने पर वह ऐसे भारस्वरूप शासकों को फेंक देती है। लोकशासक होने में बाहुबल तथा भौतिक शक्ति की आवश्यकतायें हैं, किन्तु लोकनायक होना इसके विरुद्ध है। लोकनायक अपने आपको समाज का तुच्छ सेवक समझता है, किन्तु समाज उसके एक इंगित पर अपने प्राणों की आहुति देने के लिये सदैव प्रस्तुत रहता है। लोकनायक त्याग के द्वारा समाज के हृदय में स्थान प्राप्त करता है, समाज प्रेम के सिंहासन पर उसे सादर बिठाता है। तैमूर, नादिरशाह लोकशासक कहे जा सकते हैं, लोकनायक नहीं। अकबर भी इन्हीं लोकशासकों की परम्परा में था। अकबर जिस काल का महान लोकशासक था, तुलसी उसी काल के महानतर लोकनायक थे। भारतीय इतिहास ने बुद्ध के पश्चात् सम्भवतः इतना महान लोकनायक नहीं देखा।

अब उस युग पर दृष्टिपात करें जिसमें तुलसी ने जन्म लिया। भक्तिकाल का वास्तव में वह आरम्भ काल था। इस समय तक सम्पूर्ण देश ने विदेशियों के समक्ष पूर्णतः आत्मसमर्पण कर दिया था। अब तो पराजय की एक मादक तन्द्रा विस्मृति के अतल गर्भ में ले जाकर उसके विनाश का मार्ग प्रशस्त कर रही थी। जटिलतम परिस्थितियाँ थीं जब तुलसी ने अपने जीवन के रंगमंच पर पैर रखा। तुलसी के समय का समाज आदर्शहीन था। हिन्दू समाज तो बलवैभवहीन था और मुसलमान समाज विलास-जर्जर। विलासिता का विष समाज की शिराओं में फैलकर उसे हतप्रभ तथा निर्जीव बना रहा था। समाज में श्मशान जैसी शान्ति थी किन्तु वह मृत्यु की प्रतीक थी। समाज का अधिकांश दरिद्र और अशिक्षित था। जनता को जैसे दिग्भ्रम हो गया था, मार्गदर्शक का कहीं पता न था। निराशा की नदी बाढ़ की भाँति समाज में बह रही थी; आशा के कूल समाज की दृष्टि से ओझल थे। कष्ट, दरिद्रता तथा भुखमरी के उस

भीषण प्रवाह में जन-जीवन ऊबडूब कर रहा था; उसका मन-मस्तिष्क अवसन्न था, शरीर निर्जीव। गृहस्थ धर्म का पालन असम्भव देख लोग सिर मुँड-मुँडा कर सन्यासी हो रहे थे। इन मुरमुंड सन्यासियों से देश एक बार भर उठा। उनकी संख्या की अधिकता समाज के लिए एक चिन्ता का विषय बन गई।

महान मूर्ख और निरक्षर व्यक्ति वेदशास्त्रों को चुनौती देने लगे। वेद-शास्त्रों की बातों को विकृत रूप में रखकर वे समाज पर छा जाने की चेष्टा करने लगे। असभ्य मत बरसाती दादुरों की भाँति उत्पन्न होकर ऐसी टर्र करने लगे कि जन-कल्याण की बातें स्वप्न हो गईं। समाज विशृङ्खल, लक्ष्यहीन और अंग-भंग हो रहा था। किन्तु ऐसी विषम परिस्थितियों में भी जनता के लिए प्राणाधिक पत्नी का परित्याग कर एक तरुण साधक समाज की गतिविधि के निरीक्षण में व्यस्त था। वह एक चतुर वैद्य की भाँति रुग्ण समाज की नाड़ी परीक्षा आशान्वित हृदय से कर रहा था। उसका स्वयं का हृदय कराह रहा था किन्तु उसकी आँखों में अश्रु न थे और न हृदय में निराशा। वह अपना सब कुछ त्यागकर समाज को सब कुछ देने निकल पड़ा था। यह युवक जनगण-भाग्य-विधाता, हिन्दी कविता का ज्वलन्त इतिहास, तरुण लोकनायक, कवि तुलसी था।

किन्तु कब समाज ने अपने उपकारी महापुरुषों को प्रथम दृष्टि में पहचाना है? उसने किस युग निर्माता का निरूप नहीं किया, उसकी कठिन परीक्षा नहीं ली? तुलसी भी उसके अपवाद नहीं थे।

रूढ़ियों के विरोधी प्रत्येक महापुरुष को मुग्धमति जनता का कोप भाजन बनना पड़ता है—बनना पड़ा है—और अधिकांश को तो इस गर्वमूढ़ जनता ने बलि तक लेली—कृष्ण, ईसा, महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। तुलसीदास को भी अपने विरोधियों का सामना करना पड़ा था और विरोधियों के हाथों उन्हें पर्याप्त शारीरिक और मानसिक कष्ट मिले। तुलसी ने एक धर्म के अन्दर विनाशक स्वार्थों की भाँति फैले इस सम्प्रदाय के नाशीनक को देखा था—समझा था। शिव के भक्त राम के शत्रु और रामभक्त शैवों के घोर शत्रु। तुलसी से यह सब अज्ञान का खेल नहीं देखा गया। कबीर की साखियों में भी यह शैव-वैष्णवों का संघर्ष स्पष्ट रूप से उभर कर आया है। उन्होंने लिखा था "वैष्णव की

कुटिया मनी ना शाक्त का बड़ गाँव" तथा "शाक्त काली कामरी भावे तहाँ बिछाइ।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि विद्वेष रूप से शैव वैष्णव असहिष्णु थे। तुलसी ने घबरा कर इस विषमता और संघर्ष से मुख नहीं फेर लिया—वे असमर्थ की भांति पलायन नहीं कर गये—अपितु मानसिक एवं शारीरिक कष्टों को सहते हुए वर्षों में भी जीवन का मोह त्याग एक सच्चे लोकनायक की भांति वे इस चौड़ी साम्प्रदायिक खाई को पाटने का सतत प्रयत्न करते रहे। अपने रामचरितमानस में—जो विभिन्न विरोधों का समन्वय ग्रन्थ है—उन्होंने राम तथा शिव को निकट लाने का अभूतपूर्व प्रयत्न किया। उन्होंने दोनों शक्तियों में अभेद स्थापित करके दिखाया—"शिवद्रोही मम दास कहावा, सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा," लिखकर तुलसी ने कितना महान कार्य किया इसकी सहज ही कल्पना नहीं की जा सकती। राम के मुँह से शिव की प्रशंसा सुनकर असहिष्णु तथा घोर संकीर्ण हृदय शैवों के मस्तक भी लज्जा से एक बार झुक गए। अपने समय का महानतम राम-भक्त तुलसी राम के मुँह से शिवजी की प्रशंसा करा सकता है—बिना यह सोचे हुए कि राम इस प्रकार महत्वहीन हो जायेंगे—यह उन (शैवों) के लिए कल्पनातीत बात थी। केवल एक पंक्ति ने शतशः वर्ष पुरातन वैमनस्य को क्षण भर में समाप्त कर दिया। इस एक पंक्ति का महत्व लाखों ग्रन्थों से कहीं अधिक है और इसके लेखक का""। केवल एक पंक्ति ने दो विरोधी शक्तियों को प्रेमालिङ्गन के मधुर पाश में बाँध दिया।

उसी तुलसी की कविता को जब कुछ लोग केवल 'स्वान्तः सुखाय' की संकीर्ण परिधि में सीमित करना चाहते हैं तब पता नहीं वे क्या करना चाहते हैं। ऐसे ही कुछ उर्वर बुद्धि विद्वान 'कला कला के लिए' के आधार पर तुलसी का काव्य भवन खड़ा करते हैं; जिस भावना के विरोध के लिए तुलसी ने अपना जीवन लगा दिया उसी भावना को तुलसी काव्य का आधार बताकर वे तुलसी के साथ न्याय करने का दम भरते हैं। उनके भ्रम का आधार है तुलसी का निम्नांकित वाक्य—"स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबन्धमति मञ्जुल मातनोति।" किन्तु उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि तुलसी का वास्तव में उपरोक्त पंक्ति लिखने का क्या अर्थ है।

तुलसी के समय में ऐसे कवियों की कमी नहीं थी जो अकर्मण्य, पापागार, नीच राजाओं की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक किया करते थे। वे जन-कल्याणी वाणी का दुरुपयोग कुछ ही व्यक्तियों की प्रशंसा कर किया करते थे। बदले में उन्हें मिलते थे चाँदी के कुछ टुकड़े और राजा साहब द्वारा प्रशंसा के दो शुष्क शब्द। तुलसी से यह सब कुछ नहीं सहा गया; उनकी स्वाभिमानी आत्मा तिलमिला उठी। वह तो सरस्वती को जनता की थाती समझता था; उसका दुरुपयोग कैसे करता। उपरोक्त अवाञ्छनीय बातों से उसका हृदय कितना घायल हो गया था उसकी कराह का स्वर निम्नांकित पंक्ति से फूटा पड़ता है—"कीन्हें प्राकृत जन गुणगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।" जनवाणी किसी व्यक्ति विशेष के गुणगान में नहीं लगती, वह तो जन समाज के लिए मंगल का विधान करती है। क्या तुलसी की वाणी ने यह नहीं किया! स्वान्तः सुखाय से उनका अभिप्राय है—जो किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं लिखी गयी, 'जो सब जन हिताय सब जन सुखाय' है। तुलसी का अपना सुख क्या था? क्या वह समाज से भिन्न कोई वस्तु थी? अगर भिन्न वस्तु थी तो उनकी कृति में लोक कल्याण की भावना इतनी घनीभूत क्यों है? अपने को तुच्छातितुच्छ मानने वाला यह निराभिमानी युगान्तरकारी लोक कवि, पूरी रामायण अपने मानसिक विलास के लिए लिखता, इतना बड़ा आडम्बर उससे कैसे बन पड़ता?

यही नहीं, तुलसी ने आगे चलकर इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने कह दिया है कि कविता का अपने आप में न कोई महत्व है न कोई मूल्य; वह तो समाज सापेक्ष्य है। समाज के अभाव में कविता की कल्पना नितान्त हास्यास्पद है। तुलसी की यह पंक्तियाँ अविस्मरणीय हैं जिनमें वे कविता का उद्देश्य तथा उसका कार्यक्षेत्र बताते हैं:—

मणि माणिक मुक्ता छवि जैसी।
अहिगिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुणी तन पाई।
लहहिं सकल शोभा अधिकाई॥
तैसेइ सुकवि कवित बुध कहहीं।
उपजहिं अनत अनत सुख लहहीं॥

तुलसी इस बात को और भी स्पष्ट कर देते हैं जब वे कहते हैं—

"कीरति भणिति भूत भल सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई॥"

जिस कवि को अपनेपन का किंचिन्मात्र भी गर्व नहीं था उसे व्यक्तिवादी बताना उसके साथ अन्याय करना है।

तुलसी ने समाज के जर्जर ढाँचे के प्रत्येक जोड़ को बड़े ध्यान से देखा था, उन्हें विश्वास था कि वे इसमें यथोचित सुधार कर सकेंगे। समाज की समस्यायें बहुमुखी थीं, उनका समाधान कविता में वे कैसे करें ? पता नहीं इस सोच-विचार में उन्होंने कितनी सध्या और प्रातः बिता दिए होंगे। अचानक उनके मस्तिष्क में कौंधा राम का आदर्श चरित—लोक संग्रही चरित—जो जीवन की अधिकाधिक समस्याओं को, विविधताओं को, अपने चरित्र वृत्त की परिधि में सहज ही ढँक सकता था। तुलसी का हृदय हर्ष विभोर हो उठा। तुलसी ने अपने मस्तिष्क की परिसीमाओं से समाज को बाँधकर उसे अपने हृदय रस से इतना सींचा कि वह धन्य हो गया। उनके हृदय की भावुकता की अजस्र धारा जो जन कल्याण के लिए प्रवाहित हुई उसमें मस्तिष्क बाँध ने गँदला जल मिलने से बचा लिया। जो भावुकता अपनी स्वच्छन्दता में सीमा-हीन होकर कभी-कभी समाज को विलास-सुरा पिलाकर जर्जर कर देती है उसी को मस्तिष्क से सयमित कर तुलसी ने जो रसायन तैयार किया वह समाज की निर्जीव शिराओं में नवीन रक्त का सचार कर उसे स्वस्थ बनाने वाला था। तुलसी साहित्य की एक पंक्ति भी सजग प्रहरी की भांति जन कल्याण से बेसुध और शिथिल नहीं मिलती।

तुलसी ने समाज की सर्वाङ्गीण परीक्षा कर उसके रोग का उचित निदान किया। तुलसी ने कृष्णभक्त कवियों की भाँति कृष्ण के सुदर्शन का दर्शनपक्ष ही नहीं लिया, उन्होंने कोटि काम को भी लज्जित करने वाले राम के हाथ में समाज की रक्षा के लिए वज्र से भी कठोर धनुष दे दिया। इस प्रकार उनके राम कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हैं। किन्तु समाज के समक्ष आचरण की मर्यादा का उदाहरण कौन रखेगा ? इसलिए राम शील के भी अवतार हैं। राम का चरित स्वयं काव्य तो है किन्तु इसी में तुलसी के कवि

कर्म की भी परीक्षा हो गई है। एक पंक्ति भी व्यर्थ होने पर उनके काव्य में कुरूपता का कलंक पैदा कर सकती थी किन्तु वे न तो समाज में कुरूपता देखना चाहते थे और न अपने काव्य में ही। शील-शक्ति-सौंदर्य-समन्वित लोक-संग्रही राम का चरित्र उन्होंने मार्मिक कलापूर्ण भाषा में खींचा है। तुलसी की कल्पना ने राम के चरित्र को इतना सप्राण बना दिया है कि विश्व-साहित्य के श्रेष्ठतम चरित्र उनकी ओर ईर्ष्या भरी दृष्टि से देख सकते हैं।

तुलसी दार्शनिक थे, समाज सुधारक थे, कवि थे, और सबसे अधिक एक मनुष्य थे। कबीर आदि कवियों ने समाज के गलित रुग्ण अंगों की चीरफाड़ तो निष्ठुर हाथों से की किन्तु वे उस पर मरहम नहीं लगा सके। तुलसी का काव्य समाज को चिड़चिड़ा नहीं बनाता, उसके हृदय को शान्ति देता है। यह तो ठीक है कि संत साहित्य में ऐसा दूसरा व्यक्ति कबीर को छोड़कर नहीं है जिसका अनुभव इतना परिपक्व हो और अन्तर्दृष्टि इतनी गहरी। किन्तु कबीर के 'ढाई आँखर' की ओट में कुछ स्वार्थी अपना स्वार्थ साधन करना चाहते थे। 'अलख' 'अलख' की धाँग लगाने वाले वे निरक्षर 'सवाधू' संख्या में भी कम नहीं थे। इनके समाज-विरोधी रूप को तुलसी ने कुछ ही शब्दों में स्पष्ट कर दिया है :—

"नारि मुई घर सम्पति नासी, मूँड़ मुड़ाइ भए सन्यासी।"

इन कनकटे जोगियों की समाज-विरोधी बातें सुनते-सुनते तुलसी का हृदय पक गया था। अधिक 'अलख' 'अलख' सुनना उनके लिए असह्य हो उठा। वे रोष में कह उठे—

"हम लखि हमहिं हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै राम नाम जपु नीच॥"

अभी तक समाज में भक्ति-प्रधान, ज्ञान-प्रधान, कर्म-प्रधान भक्ति पद्धतियाँ प्रचलित थीं, सबमें अलग-अलग एकांगिता थी। कोई भी मार्ग इतना विस्तृत नहीं था कि उसे लोकधर्म कहा जा सकता। तुलसी ने ज्ञान, भक्ति और कर्म का उचित सम्मिश्रण करके एक ऐसे लोकधर्म की प्रतिष्ठा की जिसमें प्रत्येक व्यक्ति प्रवेश पा सके। उन्होंने बताया—

कबीर की भाँति निर्मम नहीं है; तुलसी ने तो अपने निर्माण हाथ का ही प्रयोग समय की परिस्थितियों को देखते हुए किया। विरोधी बातों का समन्वय कोई सरल काम नहीं है—उसमें व्यक्ति की प्रतिभा, व्यावहारिक बुद्धि और नैतिक शक्ति की अग्नि परीक्षा एक साथ हो जाती है। दुर्बल स्नायुओं का व्यक्ति इतनी परस्पर विरोधिनी बातों का भार एक साथ वहन नहीं कर सकता किन्तु जन कल्याण के लिए उन्होंने उस धर्म-पर्वत को अपने मस्तक पर धारण किया, समाज कल्याण के लिए जीवन के कष्टों के विष को वे शंकर की भाँति पान कर गए, किन्तु समाज को उन्होंने उसे अमृत करके लौटाया। कितनी विरोधी बातों का तुलसी ने समन्वय किया है यह देखकर उनकी शक्ति पर आश्चर्य होता है और उनकी महान प्रतिभा पर विस्मय। तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय—रामचरितमानस आद्यन्त एक समन्वय काव्य ही है। यही कारण है कि रामचरितमानस केवल काव्य ग्रन्थ ही नहीं अपितु धर्म ग्रन्थ भी है। जनता का साधारण व्यक्ति जो साहित्यिक विशिष्टताओं—रस, छंद, अलंकार—आदि से अनभिज्ञ होता वह भी रामायण का पारायण करता है और साहित्य शास्त्र के दिग्गज विद्वान भी इस अगाध मानस में आकंठ मग्न होते हैं और उसकी थाह नहीं पाते। महामानव, महाकवि तुलसी ने समाज के सब शिशुओं के लिए अपने 'मानस' में कुछ न कुछ आकर्षण रख दिया है। बुद्धिहीन और बुद्धिमान सब अपनी जीवन यात्रा के लिये रामचरितमानस से प्रकाश और प्रेरणा ग्रहण करते हैं। श्रद्धावनत समाज तुलसी की इन दैवी शक्तियों पर मुग्ध होकर उन्हें असाधारण ज्ञान-गुण-सम्पन्न लोकोत्तर मानव या देवता समझते हैं। किन्तु लोग जिसे देवत्व कहते हैं वह तो पूर्ण मनुष्यत्व ही है। तुलसी का रामचरितमानस आज भी धर्म और युग के बीच की कड़ी है। तुलसी ने 'मानस' में परिस्थितियों का सार्वदेशिक और सार्वकालिक हल रख दिया है। मानस भावुकता का अगाध सर भी है और समस्याओं का अद्भुत कोश भी।

कुछ शब्द तुलसी की भाषा पर कहना असंगत न होगा। तुलसी भावों के अगाध सागर थे और भाषा के प्रकाण्ड पण्डित। अपने समय में प्रचलित ब्रज

और अवधी दोनों भाषाओं में उन्होंने काव्य प्रणयन किया और उन भाषाओं को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया। तुलसी-साहित्य का यदि गम्भीर अध्ययन किया जाय तो अनायास ही यह पता लग जायेगा कि अवधी में रामचरित-मानस लिखने के लिये तुलसी को कितने पाखण्ड-पण्डितों और रूढ़िरोगग्रस्त बुद्धिहीन विद्वानों से लोहा लेना पड़ा था। युग की पुकार को तुलसी के कानों ने सुना था; युगवाणी में उस पुकार को मूर्तरूप देने से उन्हें कौन रोक सकता था! असख्य बाधाओं और आपत्तियों की अवहेलना करते हुए तुलसी ने अपना सदेश युगवाणी में दिया। उनकी यह भावना उनके जनता के प्रति अदम्य प्रेम को प्रकाश में लाती है, नहीं तो इस बात को कौन अस्वीकार करेगा कि तुलसी रामचरित संस्कृत में भी लिख सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं, क्यों? उत्तर संक्षिप्त है — जन कल्याण और जन-प्रेमवश। तुलसी ने काव्यारम्भ से पूर्व लगभग २० वर्ष भाषा की साधना में व्यतीत किये थे। सरस्वती को अपने कंठ में योग्य आसन देनेके लिए उन्होंने कितनी कठिन तपस्या की होगी आज इसकी कल्पना करना कठिन है। परन्तु इतना सब जानते हैं कि इस विरक्त, सर्वत्यागी, लोकसंग्रही कवि को सरस्वती एक दिन प्रेमचेरी हो गई। और तुलसी कवियों की उस अग्रणी पंक्ति में प्रथम आ बैठे जिनके विषय में प्रसिद्ध है —

"बचन बस जासु सरस्वती करति काज मनो निज भामिनी।"

अपने समय में प्रचलित सब काव्य-पद्धतियों में सफलतापूर्वक रचना करके तुलसी ने अपने असाधारण भाषाधिकार का अपूर्व परिचय दिया। तुलसी उन महाकवियों में से हैं जिनके काव्य ग्रंथों के आधार पर लक्षणग्रंथों का निर्माण होता है; अतः लक्षण ग्रंथों के आधार पर तुलसी-काव्य के गुण-दोष खोजना कम हास्यास्पद नहीं है। भावों के उपयुक्त भाषा तो तुलसी-काव्य की आधार भूमि ही है और उदात्त भावनाओं के अबाध नृत्य के लिए तुलसी काव्य अपूर्व क्रीड़ा भूमि है। तुलसी-काव्य-कल्पतरु की छाँह में आन्त हिन्दी भाषा भाषियों को क्या नहीं मिला? यदि हिन्दी में केवल तुलसी ही होते तो भी वह अन्य भाषाओं के लिए आशीर्वाद का हाथ ऊँचा कर सकती थी। वे तुलसी निश्चय ही कविसम्राज के जाज्वल्यमान किरीट हैं जिन्होंने हिन्दी के मस्तक को ऊँचा किया है

अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहि अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥ ७ ॥
जौ बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ? ॥ ८ ॥
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगहि चाहहि, रतन कि राजहि ?" ॥ ९ ॥
लखि न परेउ तपकारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखीमुख गौरि निहारेउ ॥ १० ॥

गौरि निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
"तप करहि हर-हितु" सुनि बिहँसि बटु कहत "मुरुखाई महा" ॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो ॥ ११ ॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहि।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु हीनहि ॥ १२ ॥
भीख मागि भव खाहि, चिता नित सोवहि।
नाचहि नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहि ॥ १३ ॥
भाँग धतूर अहार छार लपटावहि।
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहि भावहि ॥ १४ ॥
सुमुखि सुलोचनि ! हर मुख पंच तिलोचन।
बाम देव फुर नाम, काम-मद-मोचन ॥ १५ ॥
एकउ हरहि न बर गुन, कोटिक दूषन।
नर कपाल, गज खाल, ब्याल, बिष भूषन ॥ १६ ॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन ॥ १७ ॥
सो सोचहि ससि कलहि सो सोचहि रौरेहि।
कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि ॥ १८ ॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु ॥ १९ ॥

पछिनाव भूत पिसाच प्रेत अनेत ऐहैं नाचि कै।
अस घोर भेस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै ॥
गज अजिन दिव्य दुकूल जोगत सखी हँसि मुख मोरि कै।
कोउ प्रगट कोउ हिय कहहिं मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै ॥ २० ॥

तुमहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं ॥ २१ ॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथा रुचि बोलइ।
अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ॥ २२ ॥
साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरित सिन्धुरुख सूप सों घेरइ ॥ २३ ॥
मनि बिनु फनि, जल हीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ २४ ॥
करन कटुक बटु बचन बिसिख सम हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए ॥ २५ ॥
बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थरथर।
"आलि, बिदा कर बटुहि बेगि, बड़ बरबर ॥ २६ ॥
कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि कें अनुराग भयउँ बड़ि बाउरि ॥ २७ ॥
दोष निधान, इसानु सत्य सब भाषेउ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥ २८ ॥
को करि बादु बिबादु बिषादु बढ़ावइ।
मीठ काहि कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ ॥ २९ ॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहिं।
बकि जनि उठहिं बहोरि, कुजुगुति सँवारहिं ॥ ३० ॥

जनि कहहिं कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की।
सिव-साधु-निंदकु मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी" ॥
सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भये प्रकट करुनासिन्धु संकर, भाल चन्द्र सुहावनो ॥ ३१ ॥

सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदन मनु मोहइ ॥ ३२ ॥
सैल कुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हिय हरषु पुलक तनु पूरति ॥ ३३ ॥
पुनि पुनि करै प्रनाम, न आवत कछु कहि।
"देखौ सुपन कि सौतुक ससिसेखर सहि" ॥ ३४ ॥
जैसे जनम दरिद्र महामनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ ॥ ३५ ॥
सफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि।
घर तें खेलत मनहुँ अबहिं आई उठि ॥ ३६ ॥
देखि रूप अनुराग महेस भए बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधारस ॥ ३७ ॥
"हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ।
पार्वती तप पेम मोल मोहि लीन्हेउ ॥ ३८ ॥
अब जो कहहु सो करउँ बिलब न यहि घरि"।
सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पाँयन परि ॥ ३९ ॥

जानकी-मंगल

[कविताओं का यह संग्रह गोस्वामीजी कृत 'जानकी-मंगल' से संकलित है। इसमें धनुष-यज्ञ का वृत्तान्त वर्णित है। विश्वामित्र राम लक्ष्मण के साथ जनकपुर जाते हैं जहां पर सीता स्वयंवर का आयोजन किया गया है। सब राजाओं के असफल हो जाने पर गुरु की आज्ञा से रामचन्द्रजी धनुष तोड़ते हैं और जानकी का वरण करते हैं।]

धनुर्भङ्ग

लै गयउ रामहिं गाधि-सुवन बिलोकि पुर हरषे हिए।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर लिए॥
नृप गहे पाँय, असीस पाई मान आदर अति किए।
अवलोकि रामहि अनुभवत मनु ब्रह्म सुख सौगुन दिए॥ १॥

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ॥ २॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भव सागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर॥ ३॥
पुण्यपयोधि मातु पितु ए सिसु सुर तरु।
रूप-सुधा-सुख देत नयन अमरनि बरु॥ ४॥
"केहि सुकृति के कुँवर" कहिय मुनि नायक।
गौर श्याम छवि धाम धरे धनुसायक॥ ५॥
बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहि देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ" ॥ ६॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि, "महिपालक।
ए परमारथ रूप ब्रह्ममय बालक॥ ७॥
पूषन - बंस - बिभूषन दसरथ - नन्दन।
नाम राम अरु लषन सुरारि-निकन्दन" ॥ ८॥

रूप सील वय बस राम परिपूरन।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन ॥ ९ ॥
लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि कै।
लै चले देखावन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि कै॥
कौसिक सराही रुचिर रचना, जनक मुनि हरषित भए।
तब राम लषन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दए ॥१०॥
राजत राज समाज जुगल रघुकुल मनि।
मनहुँ सरदबिधु उभय नखत धरनी धनि ॥११॥
काक पच्छ सिर, सुभग सरोरुह लोचन।
गौर स्याम सत-कोटि-काम-मद-मोचन ॥१२॥
तिलक ललित सर भ्रुकुटि कामकमानै।
स्रवन विभूषन रुचिर देखि मन मानै ॥१३॥
नासा चिबुक कपोल अधर रद सुन्दर।
बदन सरद बिधु निन्दक सहज मनोहर ॥१४॥
उर बिसाल बृषकन्ध सुभग भुज अति बल।
पीत बसन उपवीत, कठ मुकुता फल ॥१५॥
कटि निषग, कर कमलन्हि धरे धनु सायक।
सकल अङ्ग मनमोहन जोहन लायक ॥१६॥
राम-लषन-छबि देख मगन भए पुरजन।
उर आनन्द, जल लोचन, प्रेम पुलक तन ॥१७॥
नारि परस्पर कहहि देखि दुहुँ भाइन्ह।
"लहेउ जनम फल आजु, जनमि जग आइन्ह ॥१८॥
जग जनमि लोचन लाहु पाए" सकल सिवहिं मनावहीं।
"बर मिलो सीतहिं साँवरो, हम हरषि मगल गावहीं" ॥
एक कहहिं "कुँवर किशोर कुलिस कठोर सिवधनु है महा।
किमि लेहिं बाल मराल मदर नृपहि अस काहु न कहा" ॥१९॥
भे निरास सब भूप बिलोकत रामहिं।
"पन परिहरि सिय देव जनक बर स्यामहि" ॥ २० ॥
कहहिं एक "भलि बात, ब्याहु भल होइहि।
बर दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि" ॥ २१ ॥

सुनि सुजान नृप कहहिं "हमहिं अस सूझहि ।
तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल सूझहि ॥ २२ ॥
चितइ न सकहु राम तन, गाल बजावहु ।
विधि बस बलउ लजान, सुमति न लजावहु ॥ २३ ॥
अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि ।
गवनिहि राज समाज नाक असि फूटिहि ॥ २४ ॥
कस न पियहु भरि लोचन रूप-सुधा-रसु ।
करहु कृतारथ जनम, होहु कत नरपसु" ॥ २५ ॥
दुहुँ दिसि राजकुमार विराजत मुनिवर ।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर ॥ २६ ॥
काल-पच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि ।
लाल कमल जनु लालत बाल-मनोजनि ॥ २७ ॥
मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू ।
बिनु काज राज समाज महँ तजि लाज आपु बिगोवहू" ॥
सिख देइ भूपति साधु भूप अनूप छवि देखन लगे ।
रघुवंश कैरवचन्द चितइ चकोर जिमि लोचन ठगे ॥ २८ ॥
पुर-नर-नारि निहारहिं रघुकुल दीपहिं ।
दोसु नेह बस देहिं बिदेह महीपहिं ॥ २९ ॥
एक कहहिं "भल भूप, देहु जनि दूषन ।
नृप न सोह बिनु बचन, नाक बिनु भूषन ॥ ३० ॥
हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ ।
पन मिस लोचन लाहु सबन्हि कह दीन्हेउ ॥ ३१ ॥
अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि ।
सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि ॥ ३२ ॥
प्रथम सुनत जो राउ राम-गुन-रूपहि ।
बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहि ॥ ३३ ॥
अब करि पैज पंच महँ जो पन त्यागै ।
बिधि गति जानि न जाइ, अजसु जग जागै ॥ ३ "

अबहिं अवसि रघुनन्दन चाप चढ़ाउब।
ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब" ॥ ३५ ॥
लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि ॥ ३६ ॥
जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुंदरि सोहहीं।
मुनि ढिग दिखाए सखिन्ह कुँवर बिलोकि छबि मन मोहहीं ॥
सियमातु हरषी निरखि सुषमा अति अलौकिक राम की।
हिय कहति "कहँ धनु कुँवर कहँ बिपरीत गति बिधि बाम की" ॥ ३७ ॥
कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन रानि बिसूरति।
"कहाँ कठिन सिव धनुष कहाँ मृदु मूरति ॥ ३८ ॥
जौ बिधि लोचन अतिथि करत नहिं रामहि।
तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहि ॥ ३९ ॥
अब असमंजस भयउ न कछु कहि आवै"।
रानिहि जानि ससोच सखी समुझावै ॥ ४० ॥
"देवि! सोच परिहरिय, हरष हिय आनिय।
चाप चढ़ाउब राम बचन फुर मानिय ॥ ४१ ॥
तीनि काल कर ज्ञान कौसिकहि करतल।
सो कि स्वयंबर आनहिं बालक बिनु बल!" ॥ ४२ ॥
मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरज आयउ।
तब सुबाहु-सूदन-जसु सखिन सुनायउ ॥ ४३ ॥
सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरषइ।
बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करषइ ॥ ४४ ॥
नृप रानी पुर लोग राम तन चितवहिं।
मंजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं ॥ ४५ ॥
रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु छिनु निरखि रामहि सोचहीं।
नर नारि हरष-बिषाद-बस हिय सकल सिवहि सकोचहीं ॥
तब जनक आयसु पाय कुल-गुरु जानकिहि लै आयऊ।
सिय रूप रासि निहारि लोचन लाहु लोगन्ह पायऊ ॥ ४६ ॥

मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं।
देखि मूढ़ महिपाल मोहबस मोहहिं ॥ ४७ ॥
रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील-कमल-सर-स्रेनि मयन जनु डारइ ॥ ४८ ॥
छिनु सीतहिं छिनु रामहि पुरजन देखहिं।
रूप सील बय बंस बिसेष बिसेषहिं ॥ ४९ ॥
राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक ॥ ५० ॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदय गुन-ग्राम थूनि थिर रोपहिं ॥ ५१ ॥
राम सीय, बय समौ, सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन ॥ ५२ ॥
सो छबि जाय न बरनि देखि मन मानै।
सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै ? ॥ ५३ ॥
तब बिदेह पन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ।
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ ॥ ५४ ॥
नहिं सगुन पायेउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए।
टक टोरि कपि ज्यों नारियरु सिरु नाइ सब बैठत भए ॥
इक करहिं दाप, न चाप सज्जन बचन जिमि टारे टरै।
नृप नहुष ज्यों सब के बिलोकत बुद्धि बल बरबस हरै ॥ ५५ ॥
देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप समाज जनु तुहिन बनज बन मारेउ ॥ ५६ ॥
कौसिक जनकहिं कहेउ "देहु अनुसासन।
देखि भानु-कुल-भानु इसानु सरासन" ॥ ५७ ॥
"मुनिबर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं ॥ ५८ ॥
बानु बानु जिमि गयउ, गवहिं दसकंधरु।
को अवनीतल इन्ह सम बीर धुरंधरु ॥ ५९ ॥

पारबती मन सरिस अचल धनु चालक।
हहिं पुरारि तेउ एक-नारि-ब्रत पालक ॥ ६० ॥
सो धनु कहिय बिलोकन भूप किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहि ॥ ६१ ॥
रोम रोम छबि निंदति सोभ मनोजनि।
देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि" ॥ ६२ ॥
मुनि हँसि कहेउ "जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ ॥ ६३ ॥
सब मम प्रिय नहिं जानि मूरति जनक कौतुक देखहू।
धनु सिन्धु नृप-बल जल बढ्यो रघुबरहि कुंभज लेखहू" ॥
सुनि सकुचि सोचहिं जनक गुरुपद बंदि रघुनन्दन चले।
नहिं हरष हृदय बिषाद कछु भए सगुन शुभ मंगल भले ॥ ६४ ॥
बरिसन लगे सुमन सुर, दुंदुभि बाजहिं।
मुदित जनकपुर-परिजन नृप गन लाजहिं ॥ ६५ ॥
महि महि धरनि लखन कह बलहि बढ़ावन।
राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन ॥ ६६ ॥
गए सुभाय राम जब चाप समीपहि।
सोच सहित परिवार बिदेह महीपहि ॥ ६७ ॥
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ।
गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सकोचइ ॥ ६८ ॥
होति बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहि।
फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहि ॥ ६९ ॥
धीरज धरति, सगुन बल रहत सो नाहिन।
बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन ॥ ७० ॥
अन्तरजामि राम मरम सब जानेउ।
धनुष चढ़ाइ कौतुकहि कान लगि तानेउ ॥ ७१ ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृग-राज-किसोर महागज गंजेउ ॥ ७२ ॥

गजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।
रघुबीर जस-मुकुता विपुल सब भुवन पटु पेटक भरे॥
हित मुदित, अनहित रुदित मुख छवि कहत कवि धनु जाग की।
जनु भोर चक्र चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की॥ ७३॥

नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे।
देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे॥ ७४॥
तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गावत।
चलीं लेवाइ जानकिहिं मा मनभावत॥ ७५॥
कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छवि अतुलित अस कवि को इइ?॥ ७६॥

चारि चहत मानस अगम चनक चारि को लाहु।
चारि परिहरें चारि कों दान चारि चख चाहु॥ ९॥
बेष बिसद बोलनि मधुर मनु कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइऐ भएँ बिषय जल मीन॥ १०॥
बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीब निवाज॥ ११॥
कहा बिभीषन लै मिल्यो कहा बिगार्‌यो बालि।
तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आए पालि॥ १२॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ १३॥
कहा बिभीषन लै मिल्यौ कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जानें बिना मूढ़ मीजिहैं हाथ॥ १४॥
सभा सभासद निरखि पट पकरि उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहों बसन बेष जदुनाथ॥ १५॥
बिनहीं रितु तरुबर फरत सिली द्रवति जल जोर।
राम लखन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर॥ १६॥
राम राज राजत सकल धरम निरत नर नारि।
राग न रोष न दोष दुख सुलभ पदारथ चारि॥ १७॥
राम राज संतोष सुख घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु सुरधेनु महि अभिमत भोग बिलास॥ १८॥
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज॥ १९॥
तुलसी बिलसत नखत निसि सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस सिसु हाथ॥ २०॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥ २१॥
हरि हर जस सुर नर गिरहुँ बरनहिं सुकबि समाज।
हाँडी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज॥ २२॥

राम बिरहँ दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु।
तुलसी मंगल मरन तरु सुचि सनेह जल सींचु ॥ २३ ॥

सोरठा—जीवन मरन सुनाम जैसें दसरथ राम को।
जियत खिलाए राम राम बिरहँ तनु परिहरेउ ॥ २४ ॥

दोहा—सिय कारन रन मरत मुनि सिद्ध ठौर घर नीचु।
तुलसी सकल सिहात मुनि गीधराज की मीचु ॥ २५ ॥

मुए मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीचु।
लही न काहू आजु लौं गीधराज की मीचु ॥ २६ ॥

मुएँ मुकुत जीवत मुकुत मुकुत मुकुत हूँ बीचु।
तुलसी सबही तें अधिक गीधराज की मीचु ॥ २७ ॥

जेहि मग प्रतिबिम्बनि आनि जेहि कछु दरपन में छाँहि।
तुलसी ज्यों जग जीव गति करी जीव के नाँहि ॥ २८ ॥

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥ २९ ॥

कहिबे कहँ रसना रची सुनिबे कहँ किए कान।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान ॥ ३० ॥

सकल अगुन आकार सगुन समुझिय उभय प्रकार।
सोइ सार अगुन मत तुलसी चाह बिचार ॥ ३१ ॥

परमारथ पहिचानि मति लसति बिषय लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरित मानहुँ सती परानि ॥ ३२ ॥

दिएँ पीठि पाछें लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ ॥ ३३ ॥

सोई सेंवर तेइ सुवा सेवत सदा बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत सन्त ॥ ३४ ॥

करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मति रंक।
पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धिउ नाउँ कलंक ॥ ३५ ॥

ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥ ३६ ॥

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥ ३७ ॥
दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहिं राम तजि काम मद करहिं सदा सतसंग ॥ ३८ ॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ ३९ ॥
जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥ ४० ॥
चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि ॥ ४१ ॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गए अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥ ४२ ॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥ ४३ ॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक ॥ ४४ ॥
उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥ ४५ ॥
मान राखिबो माँगिबो प्रिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु ॥ ४६ ॥
पबि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि ॥ ४७ ॥
तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम ॥ ४८ ॥
तुलसी चातक माँगनो एक, एक घन दानि।
देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूटक पानि ॥ ४९ ॥
तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥ ५० ॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि ॥ ५१ ॥
नहि जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मागनेहि को बारिद बिनु देइ ॥ ५२ ॥
को को ज्यायो जगत में जीवन दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥ ५३ ॥
साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु ॥ ५४ ॥
मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥ ५५ ॥
बास बेर बोलनि चलनि मानस मंजु मराल।
तुलसी चातक प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥ ५६ ॥
प्रेम न परखिय परुषपन पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरसै मेह ॥ ५७ ॥
होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़ ॥ ५८ ॥
गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ॥ ५९ ॥
चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर ॥ ६० ॥
बध्यो बधिक परयो पुन्य जल उलटि उठाई चौंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खौंच ॥ ६१ ॥
अंड फोरि कियो चेटुवा तुष पर्यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर बारि ॥ ६२ ॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारहीं बार।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर धार ॥ ६३ ॥
सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को ॥ ६४ ॥

जाचै बारह मास पीए पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन ॥ ६५ ॥
तुलसी के मत चातकहिं केवल प्रेम पिश्रास।
पिश्रत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास ॥ ६६ ॥
श्रालबाल मुकुता हलनि हिय सनेह तरु मूल।
होइ हेतु नित चातकहि स्वाति सलिल श्रनुकूल ॥ ६७ ॥
उप्न काल श्ररु देह खिन मग पथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं श्रन जल सींचे रूख ॥ ६८ ॥
श्रन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम ॥ ६९ ॥
एक श्रंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि श्रहार वहि देह ॥ ७० ॥
श्रापु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ॥ ७१ ॥
सरत तुहिन लखि बनज बन रबि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस श्रथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ ॥ ७२ ॥
तुलसी भलो सुसग तें पोच कुसगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर श्रसि लोह बिलोकहु लोइ ॥ ७३ ॥
गुरु सगति गुरु होइ सो लघु सगति लघु नाम।
चार पदारथ में गनै नरक द्वारहू काम ॥ ७४ ॥
तुलसी गुरु लघुता लहत लघु सगति परिनाम।
देवी देव पुकारिश्रत नीच नारि नर नाम ॥ ७५ ॥
जो जो जेहि रस मगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रस गुन दोष बिचारिबो रसिक रीति पहिचानि ॥ ७६ ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस श्रपजस दीन्ह ॥ ७७ ॥
सठ सहि साँसति पति लहत सुजन कलेस न कायँ।
गढ़ि गढ़ि पाहन पूजिऐ गडकि सिला सुभायँ ॥ ७८ ॥

सरल बक्र गति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंबित राहु ॥ ७९ ॥
खल उपकार बिकार फल तुलसी जान जहान।
मेढ़क मर्कट बनिक बक कथा सत्य उपखान ॥ ८० ॥
तुलसी खल बानी मधुर सुनि समुझिअ हिय हेरि।
राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि ॥ ८१ ॥
पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह अब देखिबी रसानि ॥ ८२ ॥
जासु भरोसे सोइऐ राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीस ॥ ८३ ॥
हँसनि मिलनि बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह।
छुवत जो सकुचइ सुमति सो तुलसी तिन्हकी छाँह ॥ ८४ ॥
कपट सार सूची सहस बाँधि बचन पर वास।
कियो दुराउ चहै चातुरी सो सठ तुलसीदास ॥ ८५ ॥
कलह न जानब छोट करि कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह जरत धनिक धन धाम ॥ ८६ ॥
बोल न मोटे मारिऐ मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो जीते हारि निहारु ॥ ८७ ॥
जो परि पायँ मनाइऐ तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिऐ जहँ जीते हूँ हारि ॥ ८८ ॥
जूझे ते भल बूझिबो भली जीति ते हार।
डहके तें डहकाइबो भलो जो करिअ बिचार ॥ ८९ ॥
जा रिपु सों हारेहुँ हँसी जितें पाप परितापु।
तासों रारि निवारिऐ समयँ सँभारिअ आपु ॥ ९० ॥
जो मधु मरै न मारिऐ माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ ॥ ९१ ॥
रोष न रसना खोलिऐ बरु खोलिअ तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि ॥ ९२ ॥

पेट न फूलत बिनु कहें कहत न लागइ देर।
सुमति बिचारें बोलिऐ समुझि कुफेर सुफेर ॥ ६३ ॥
बचन कहे अभिमान के पारथ पेरत सेतु।
प्रभु तिअ लूटत नीच भर जय न मीचु तेहि हेतु ॥ ६४ ॥
खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बन्धु कियो काल ॥ ६५ ॥
लखइ अघानो भूख ज्यों लखइ जीति में हारि।
तुलसी सुमति सराहिऐ मग पग धरइ बिचारि ॥ ६६ ॥
सिन्धु तरन कपि गिरि हरन काज साईं हित दोउ।
तुलसी समयहिं सब बड़ो बूझत कहुँ कोउ कोउ ॥ ६७ ॥
तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिवेक।
साहित साहस सत्य ब्रत राम भरोसो एक ॥ ६८ ॥
गांठि बँध ते परतीति बड़ि जेहि सब को सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत गाड़े बढ़त अनाज ॥ ६६ ॥
सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिअ कहि करि गए सुजान ॥१००॥
चलब नीति मग राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिअ सो बसन जो न पखारें फीक ॥१०१॥
दोहा चारु विचारु चलु परिहरि बाद बिवाद।
सुकृत सीवँ स्वारथ अवधि परमारथ मरजाद ॥१०२॥
कूप खनत मन्दिर जरत आएँ धारि बबूर।
बवहिं नवहिं निज काज सिर कुमति सिरोमनि कूर ॥१०३॥
जो सुनि समुझि अनीति रत जागत रहैं जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥१०४॥
लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस।
करत गगन को गेडुआ सो सठ तुलसीदास ॥१०५॥
लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ॥१०६

तुलसी निरमय होत नर सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति लखिअत अछत तनु सुख सम्पति गति पाइ ॥ १०७ ॥
साहब ते सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान ॥ १०८ ॥
कलिजुग सम जुग आनि नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुनगन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥ १०९ ॥
कलि पाखंड प्रचार प्रबल पाप पाँवर पतित।
तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल ॥ ११० ॥
रामचन्द्र मुख चन्द्रमा नित चकोर जब होइ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥ १११ ॥
मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी ऐसे जानिए राम गरीबनेवाज ॥ ११२ ॥

बरवै रामायण

[यह अंश गोस्वामीजी कृत "बरवै रामायण" से संग्रहीत है। अपनी इस कृति में गोस्वामीजी अधिक चमत्कार-प्रिय प्रतीत होते हैं। अलंकारों की जैसी सुन्दर योजना हमें इन रचनाओं में मिलती है वैसी गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों में दुष्प्राप्य है। बरवै रामायण बरवै छन्द में संक्षिप्त राम-कथा का वर्णन है। प्रारम्भ में बाल काण्ड में सीता के सौन्दर्य की व्यंजना दर्शनीय है।]

बाल काण्ड

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ १ ॥
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग, सखि ! कोमल, कनक कठोर ॥ २ ॥
सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ ॥ ३ ॥
चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥ ४ ॥
सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हारबेलि पहिरावौं चंपक होत ॥ ५ ॥
साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।
राम नीतिरत, काम कहाँ यह पाव ? ॥ ६ ॥
भाल तिलक सर, सोहत भौंह कमान।
मुख अनुहरिया केवल चन्द समान ॥ ७ ॥
तुलसी बक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि ॥ ८ ॥

कामरूप मम तुलसी राम स्वरूप।
को कवि समसरि करै परै भवकूप ॥ ६ ॥
चढ़त दसा यह उतरत जात निदान।
कहौं न कबहूँ करकस भौंह कमान ॥ १० ॥
नित्य नेम कृत अरुन उदय जब कीन।
निरखि निसाकर-नृप मुख भए मलीन ॥ ११ ॥
कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस।
तमकि ताहि ए तोरिह कहब महेस ॥ १२ ॥
नृप निरास भए निरखत नगर उदास।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥ १३ ॥
का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यह अनुहारि ॥ १४ ॥
गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ॥ १५ ॥
उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुवर के भए उनीदे नैन ॥ १६ ॥

अयोध्या काण्ड

सात दिवस भए साजत सकल बनाउ।
का पूछहु सुठि राउर सरल सुभाउ ॥ १७ ॥
राज भवन सुख बिलसत सिय सँग राम।
बिपिन चले तजि राज सुबिधि बड़ बाम ॥ १८ ॥
कोउ कह नरनारायन, हरिहर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु-मनसिज दोउ ॥ १९ ॥
तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान।
राम लखन के रूप न देखेउ आन ॥ २० ॥
तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साँच।
निगानाँग करि नितहि नचाइहि नाच ॥ २१ ॥

सजल कठौता कर गहि कहत निषाद।
चढ़उ नाव पग धोइ करहु जनि बाद॥ २२॥
कमल कटकिल सजनी, कोमल पाइ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित निज दरसाइ॥ २३॥

(वाल्मीकि-वचन)

द्वै भुज कर हरि रघुवर सुन्दर वेश।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष॥ २४॥

अरण्य काण्ड

बेद नाम कहि, अँगुरिन खडि अकास।
पठयो सुपनखाहि लखन के पास॥ २५॥
हेमलता सिय मूरति मृदु मुसकाइ।
हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ॥ २६॥
जटा मुकुट कर सर धनु, सग मरीच।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच॥ २७॥

(राम-वाक्य)

कनक सलाक, कला ससि, दीप सिखाउ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहि बताउ॥ २८॥
सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि।
किहेसि भँवर कर हरवा हृदय विदारि॥ २९॥
सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ।
अगिनि-ताप है हम कहँ सँचरत आइ॥ ३०॥

किष्किन्धा काण्ड

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम॥ ३१॥
कुजन-पाल गुन-बर्जित, अकुल, अनाथ।
कहहुँ कृपानिधि राउर कस गुन गाथ॥ ३२॥

सुन्दर काण्ड

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ॥ ३३ ॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम ॥ ३४ ॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होइ ॥ ३५ ॥
राम-सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार।
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार ॥ ३६ ॥

(कपि-वाक्य)

सिय बियोग-दुख केहि बिधि कहउँ बखानि।
फूल बान ते मनसिज बेधत आनि ॥ ३७ ॥
सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि ॥ ३८ ॥

लंका काण्ड

बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनन्त।
जलधि सरिस को कहै राम भगवन्त ॥ ३९ ॥

रामचरित-मानस

[चौपाइयों के प्रस्तुत प्रकरण में राम-नाम की महिमा का विशद वर्णन किया गया है। राम का नाम लेने से किस प्रकार पतित से पतित और पापी से पापी मनुष्यों का उद्धार हो जाता है, यही यहाँ वर्णित है।]

बालकांड

दोहा—गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

बन्दौं राम नाम रघुबर को। हेतु कृशानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्राण सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो॥
महामन्त्र जोइ जपत महेसू। काशी मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जानि आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उलटा जापू॥
सहसनाम सम सुनि शिव बानी। जपि जेइ शिव संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषण तिय भूषण ती को॥
नाम प्रभाव जान शिव नीके। कालकूट फल दीन्ह अमी के॥

दोहा—वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास।
राम नाम बर वर्ण युग, श्रावण भादौं मास॥

अक्षर मधुर मनोहर दोऊ। वर्ण विलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखण सम प्रिय तुलसी के॥
वर्णत बरण प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥
नर नारायण सरिस सुभ्राता। जग पालक विशेष जन त्राता॥
भक्ति सुतिय कल करण विभूषण। जगहित हेतु विमल विधु पूषण॥
स्वादु तोष सम सुगति सुधा के। कमठ शेष सम धर वसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह यशोमति हरि हलधर से॥

दोहा—एक छत्र एक मुकुट मनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहैं साधू॥
देखिय रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहि नाम विहीना॥
रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहिं पहिचाने॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न जात बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

दोहा—राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरे, जो चाहसि उजियार॥

नाम जीह जपि जागहिं योगी। बिरति बिरंचि प्रपंच वियोगी॥
ब्रह्मसुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भक्त जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा॥
चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥

दोहा—सकल कामनाहीन जे, राम भक्ति रसलीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिनहुँ किये मन मीन॥

अगुण सगुण दोउ ब्रह्म स्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूते। किय ज्यहि युग निज बश निज बूते॥
प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जन की। कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एक दारुगत देखिय एकू। पावक युग सम ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम युग सुगम नाम ते। कहहुँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते॥
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी। सत चेतन घन आनँद राशी॥

अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम निरूपण नाम यतन ते । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते ॥

दोहा—निर्गुण ते इहि भाँति बड़, नाम प्रभाव अपार ।
कहउँ नाम बड़ राम ते, निज विचार अनुसार ॥

राम भक्ति हित नरतनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा । भक्त होहिं मुद मंगल वासा ॥
राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
ऋषि हित राम सुकेत सुताकी । सहित सेन सुत कीन्ह वेबाकी ॥
सहित दोष दुख दास दुराशा । दलै नाम जिमि रवि निशि नाशा ॥
भञ्ज्यो राम आप भव चापू । भव भय भञ्जन नाम प्रतापू ॥
दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन मन अमित नाम किय पावन ॥
निशिचर निकर दले रघुनंदन । नाम सकल कलि कलुष निकंदन ॥

दोहा—शबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुण गाथ ॥

नाम प्रताप शम्भु अविनाशी । साज अमंगल मंगल राशी ॥
शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी । नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हर हरि प्रिय आपू ॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भक्त शिरोमणि भे प्रह्लादू ॥
ध्रुव सगलानि जप्यो हरिनामू । पायउ अचल अनूपम ठामू ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने वश करि राख्यो रामू ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥

दोहा—राम नाम को कल्प तरु, कलि कल्याण निवासु ।
जो सुमिरत भये भांग्यते, तुलसी तुलसीदासु ॥

चहुँ युग तीन काल तिहुँ लोका । भये नाम जपि जीव विशोका ॥
वेद पुराण सन्त मत येहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ॥
कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत शमन सकल जगजाला ॥
राम नाम कहि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। राम सुमति समरथ हनुमानू॥

दोहा—राम नाम नर केसरी, कनककशिपु कलि काल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालहिं दलि सुरसाल॥

भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिशि दशहू॥
सुमिरि सो राम नाम गुणगाथा। करौं नाइ रघुनाथहिं माथा॥
मोरि सुधारहिं सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥
राम सुस्वामि कुसेवक मोसे। निज दिशि देखि दयानिधि पोसे॥
लोकहुँ वेद सुसाहेब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर॥
सुकवि कुकवि निजमति अनुसारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु सुजान सुशील नृपाला। ईश अंश भव परम कृपाला॥
सुनि सनमानहिं सबन सुबानी। भणित भक्ति मति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल स्वभाऊ। जानि शिरोमणि कोशल राऊ॥
रीझत राम सनेह निसोते। को जग मन्द मलिन मति मोते॥

दोहा—शठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलयान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु॥
हमहुँ कहावत सब कहत, राम सहत उपहास।
साहेब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी॥
समुझि सहमि मोहिं अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्ह नहिं सपने॥
सुनि अवलोकि सुचित चखु चाही। भक्ति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ अति नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥
रहत न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरत सौ बार हिये की॥
जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली॥
सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी॥
ते भरतहिं भेंटत सनमाने। राजसभा रघुवीर बखाने॥

दोहा—प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहब शील निधान॥

राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥
यहि विधि निज गुण दोष कहि, सबहिं बहुर शिर नाइ।
बरणौं रघुवर विशद यश, सुनि कलि कलुष नशाइ॥

याज्ञवल्क्य जो कथा सुनाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई॥
कहिहौं सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी॥
शम्भु कीन्ह यहि चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
सो शिव काकभुशुण्डहि दीन्हा। राम भक्त अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन याज्ञवल्क्य मुनि पावा। तिन पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता वक्ता समशीला। समदरशी जानहिं हरि लीला॥
जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना॥
औरौ जे हरिभक्त सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं विधिनाना॥

दोहा—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो शूकर खेत।
समुझी नहीं तसि बालपन, तब अति रहेहुँ अचेत॥

अयोध्या में रामजन्मोत्सव और बालक्रीड़ाएँ

[यह अंश भी 'मानस' के बालकाण्ड से संग्रहीत है। भगवान राम के अवध में जन्म ग्रहण करने पर अवधपुरी की शोभा तथा प्रसन्नता का विस्तृत वर्णन किया गया है। बाल्यकाल में शिशुओं की क्रीड़ाओं का भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है।]

भये प्रकट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी॥
हर्षित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घन श्यामा निज आयुध भुज चारी॥
भूषण बनमाला नयन विशाला शोभासिंधु खरारी॥
कह दुहुँ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता॥
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता॥
करुणा सुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता॥
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रकट भये श्रीकन्ता॥

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै ॥
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै ॥
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ॥
कीजै शिशु लीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ॥
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥

दोहा—विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ॥

सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी । सम्भ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हर्षित जहँ तहँ धाईं दासी । आनन्द मगन सकल पुर बासी ॥
दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक शरीरा । चाहत उठन करत मति धीरा ॥
जाकर नाम सुनत शुभ होई । मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानन्द पूरि मन राजा । कहा बुलाइ बजावहु बाजा ॥
गुरु वशिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । आये द्विजन सहित नृप द्वारा ॥
अनुपम बालक देखि न जाई । रूप राशि गुण कहि न सिराई ॥

दोहा—तब नाँदीमुख श्राद्ध करि, जातकर्म सब कीन्ह ।
हाटक धेनु बसन मणि, नृप विप्रन कहँ दीन्ह ॥

ध्वज पताक तोरण पुर छावा । कहि न जाय ज्यहि भाँति बनावा ॥
सुमन वृष्टि आकाश ते होई । ब्रह्मानंद मगन सब कोई ॥
वृन्द वृन्द सब चलीं लुगाई । सहज शृँगार किये उठि धाईं ॥
कनक कलश मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥
करि आरती निछावरि करहीं । बार बार शिशु चरणन परहीं ॥
मागध सूत बंदि गुण गायक । पावन गुण गावहिं रघुनायक ॥
सर्वस दान दीन्ह सब काहू । ज्यहि पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृगमद चन्दन कुंकुम कीचा । मची सकल बीथिन बिच बीचा ॥

दोहा—गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगट भये सुख कन्द।
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नर वृन्द॥

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जन्मत भई सोऊ॥
वह सुख सम्पति समय समाजा। कहि न सकै शारद अहि राजा॥
अवधपुरी सोहै इहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी॥
अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़ै अबीर मनहुँ अरुणारी॥
मन्दिर मणि समूह जनु तारा। नृप गृह कलश सो इन्दु उदारा॥
भवन वेद ध्वनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय सुख सानी॥
कौतुक देखि पतग भुलाना। एक मास तेहि जात न जाना॥

दोहा—मास दिवस का दिवस भा, मर्म न जानै कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कौन विधि होइ॥

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमणि चले करत गुण गाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन वर्णत निज भागा॥
औरो एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुशुण्डि सग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहिं कोऊ॥
परमानन्द प्रेम सुख फूले। बीथिन फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सब चरित जान पै सोई। कृपा राम की जा पर होई॥
त्यहि अवसर जो ज्यहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो ज्यहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना विधि चीरा॥

दोहा—मन सन्तोष सबन के, जहँ तहँ देहिं अशीश।
सकल तनय चिर जीवहु, तुलसिदास के ईश॥

कछुक दिवस बीते यहि भाँती। जात न जानहिं दिन अरु राती॥
नामकरण कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी॥
करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा॥
जो आनन्दसिन्धु सुखराशी। सीकर ते त्रैलोक्य प्रकाशी॥

सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥
विश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन ते रिपु नाशा। नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा॥

दोहा—लच्छण धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वशिष्ठ तेहि राखेउ, लछमण नाम उदार॥

धरणउ नाम गुरु हृदय विचारी। वेद तत्त्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सर्वस शिव प्राना। बाल केलिरस तेहि सुख माना॥
बारेहि ते निज हित पति जानी। लछमण राम चरण रति मानी॥
भरत शत्रुहन दोनों भाई। प्रभु सेवक जस प्रीति बड़ाई॥
श्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृण तोरी॥
चारिउ शील रूप गुण धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥
हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकाशा। सूचत किरण मनोहर हासा॥
कबहुँ उछंग कबहुँ वर पलना। मातु दुलार करहिं प्रिय ललना॥

दोहा—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण विगत विनोद।
सो अज प्रेम भक्ति वश, कौशल्या की गोद॥

काम कोटि छवि श्याम शरीरा। नील कंज वारिद गंभीरा॥
अरुण चरण पंकज नख जोती। कमल दलन बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिश ध्वज अंकुश सोहै। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहै॥
कटि किंकणी उदर त्रय रेखा। नाभि गँभीर जान जेहि देखा॥
भुज विशाल भूषण युत भूरी। हिय हरि नख शोभा अति रूरी॥
उरमणि हार पदिक की शोभा। विप्र चरण देखत मन लोभा॥
कबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छवि छाई॥
दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे। नासा तिलक को बरणै पारे॥
सुन्दर श्रवण सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरि बोला॥
नील कमल दोउ नयन विशाला। विकट भृकुटि लटकन वर भाला॥
चिक्कण कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झिंगुलिया तनु पहिराये। जानुपाणि विचरत महि माये॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुत शेषा। सो जाने स्वप्नेहु जिन्ह देखा॥

दोहा—सुख सन्दोह मोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेम बश, करि शिशु चरित पुनीत॥

राम कथा की प्रस्तावना

[यह चौपाइयाँ 'रामचरित-मानस' के बालकाण्ड से ली गई हैं। प्रमुख देवताओं की स्तुति के उपरान्त गोस्वामीजी ने सन्त और असन्त दोनों की वन्दना की है, साथ ही सज्जनों तथा दुर्जनों के गुणों तथा दोषों की भी विस्तृत विवेचना की है। अपनी रचना के प्रति वह सर्वथा से उदारता की याचना करते हुए दिखाई पड़ते हैं।]

जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरबदन।
करौ अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभगुणसदन॥ १॥
मूक होहि वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सुदयाल, द्रवौ सकल कलिमल-दहन॥ २॥
नील-सरोरुह श्याम, तरुण-अरुण-वारिज नयन।
करौ सो मम उर धाम, सदा क्षीरसागर शयन॥ ३॥
कुन्द-इन्दु सम देह, उमारमण करुणा-अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥ ४॥
बन्दौं गुरुपद कञ्ज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महा मोह तम पुञ्ज, जासु वचन रविकरनिकर॥ ५॥

बन्दौं गुरुपद-पदुम-परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अमियमूरिमय चूरण चारू। शमन सकल भवरुजपरिवारू॥
सुकृत शम्भुतनु विमल विभूती। मञ्जुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मञ्जु मुकुरमलहरणी। किये तिलक गुणगण वशकरणी॥
श्रीगुरुपद-नख मणिगण ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोहतम सो सुप्रकासू। बड़े भाग्य उर

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक । गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक ॥

दोहा—यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिय दृग दोष बिभंजन ॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनौं रामचरित भव मोचन ॥
बंदौं प्रथम महीसुर चरना । मोहजनित संसय सब हरना ॥
सुजन समाज सकल-गुन-खानी । करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥
साधुचरित शुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥
मुद मंगलमय सन्त समाजू । जो जग जंगम तीरथ राजू ॥
राममक्ति जहँ सुरसरि धारा । सरस्वति ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥
बिधि निषेधमय कलिमल हरनी । कर्म कथा रबिनन्दिनि बरनी ॥
हरि हर कथा बिराजत बेनी । सुनत सकल मुद मंगल देनी ॥
बट बिश्वास अचल निज धर्मा । तीरथराज समाज सुकर्मा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देशा । सेवत सादर शमन कलेशा ॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ । देय सद्य फल प्रकट प्रभाऊ ॥

दोहा—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥ २ ॥

मज्जन फल देखिय ततकाला । काक होहिं पिक बकहु मराला ॥
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई । सतसङ्गति महिमा नहिं गोई ॥
बाल्मीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिन सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिन सुलभ न सोई ॥
सतसङ्गति मुद मङ्गल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
शठ सुधरहिं सतसङ्गति पाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

विधि बश सुजन कुसंगति परहीं । फणि मणि सम निज गुण अनुसरहीं ॥
विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहि जात न कैसे । शाक बणिक मणिगणगुण जैसे ॥

दोहा—बन्दौं सन्त समानचित, हित अनहित नहिं कोय ।
अञ्जलि गत शुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोय ॥ ३ ॥
सत सरल चित जगतहित जानि स्वभाव सनेहु ।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु ॥ ४ ॥

बहुरि बंदि खलगण सतिभाये । जे बिनु काज दाहिने बाँये ॥
परहित हानि लाभ जिन केरे । उजरे हर्ष विषाद बसेरे ॥
हरि हर यश राकेश राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ॥
तेज कृशानु रोष महिषेशा । अघ अवगुण धन धनिक धनेशा ॥
उदय केतुसम हित सब ही के । कुम्भकर्ण सम सोवत नीके ॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ॥
बन्दौं खल जस शेष सरोषा । सहस बदन बरणें परदोषा ॥
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना । पर अघ सुनै सहस दश काना ॥
बहुरि शक्र सम बिनवौं तेही । सन्तत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा । सहस नयन परदोष निहारा ॥

दोहा—उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति ।
जानि पाणि युग जोरि करि, बिनती करौं सप्रीति ॥ ५ ॥

मैं अपनी दिशि कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहुँ कि कागा ॥
बंदौं सन्त असज्जन चरणा । दुखप्रद उभय बीच कछु बरणा
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं । मिलत एक दारुण दुख
उपजहिं एक संग जलमाहीं । जलज जोंक जिमि गुण
सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग
भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुयश
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल
गुण अवगुण जानत सब कोई । जो जेहि

दोहा—भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ।। ६ ।।

खल अघ अगुन साधु गुणगाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ।।
तेहिते कछु गुण दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिन पहिचाने ।।
भलेउ पोच सब बिधि उपजाये । गनि गुण दोष बेद बिलगाये ।।
कहहिं बेद इतिहास पुराना । विधिप्रपंच गुण अवगुण साना ।।
दुख सुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ।।
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ।।
माया ब्रह्म जीव जगदीशा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीशा ।।
काशी मग सुरसरि क्रमनाशा । मरु मालव महिदेव गवाशा ।।
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा । निगमागम गुण दोष विभागा ।।

दोहा—जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ।। ७ ।।

जनक वाटिका

[विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुँचने पर राम लक्ष्मण का गुरुसेवा करना, पुष्प-वाटिका में सीता से साक्षात्कार, राम को देखकर सुध भूल जाना इन पदों में वर्णित है।]

दोहा—उठे लखन निशि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान ।
गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान ।

सकल शौच करि जाइ नहाये । नित्य निबाहि गुरुहि शिर नाये ।।
समय जानि गुरु आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।
भूप बाग वर देखेउ जाई । जहँ बसन्त ऋतु रही लुभाई ।।
लागे विटप मनोहर नाना । बरण बरण वर वेलि विताना ।।
नव पल्लव फल सुमन सुहाये । निज सम्पति सुरतरुहि लजाये ।।
चातक कोकिल कीर चकोरा । कूजत विहग नचत कल मोरा ।।

मध्य बाग सर सोह सुहावा। मणि-सोपान विचित्र बनावा॥
विमल-सलिल सरसिज बहुरंगा। जल-खग कूजत गुंजत-भृंगा॥

दोहा—बाग तड़ाग विलोकि प्रभु, हर्षे बंधु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

चहुँ दिशि चितै पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
त्यहि अवसर सीता तहँ आईं। गिरिजा पूजन जननि पठाईं॥
संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरणि न जाय देखि मन मोहा॥
मज्जन करि सर सखिन समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर माँगा॥
एक सखी सिय-संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेइ दोउ बन्धु विलोकेउ जाई। प्रेम-विवश सीता पहँ आई॥

दोहा—तासु दशा देखी सखिन, पुलक गात जल नयन।
कहु कारण निज हर्ष-कर, पूछहिं सब मृदु बयन॥

देखन बाग कुँवर दोउ आये। वय किशोर सब भाँति सुहाये॥
श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकण्ठा जानी॥
एक कहहिं नृप सुत ते आली। सुने जे मुनि सँग आये काली॥
जिन्हि निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववश नगर नर नारी॥
बर्णत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवशि देखिये देखन-योगू॥
तासु वचन अति सियहिं सुहाने। दरश लागि लोचन अकुलाने॥
चलीं अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥

दोहा—सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिशि, जनु शिशु मृगी सभीत॥

कंकण-किंकिणि नूपुर-धुनि सुनि। कहत लषण सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही। मनसा विश्व-विजय कहँ कीन्ही॥
अस-कहि फिरि चितये त्यहि ओरा। सियमुख शशि भये नयन चकोरा॥
भये विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल॥

देखि सीय-शोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा॥
जनु विरंचि सब निज-निपुणाई। विरचि विश्व कहँ प्रगट दिखाई॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि गृह दीप-शिखा जनु बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय विदेह-कुमारी॥

दोहा—सिय शोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि।
बोले शुचि मन अनुज सन, वचन समय अनुहारि॥

तात जनकतनया यह सोई। धनुष-यज्ञ ज्यहि कारण होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करति प्रकाश फिरति फुलवाई॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
सो सब कारण जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥
रघुवंशिन कर सहज स्वभाऊ। मन कुपथ पग धरै न काऊ॥
मोहिं अतिशय प्रतीति जिय केरी। जेहि स्वप्नेहु परनारि न हेरी॥
जिनके लहहिं न रिपु रण-पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन दीठी॥
मङ्गन लहहिं न जिनके नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥

दोहा—करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छवि, करत मधुप इव पान॥

चितवत चकित चहूँ दिशि सीता। कहँ गये नृप किशोर मन चीता॥
जहँ विलोकि मृग-शावक नैनी। तहँ जनु बरष-कमल-सित श्रेनी॥
लता ओट तब सखिन लखाये। श्यामल गौर किशोर सुहाये॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हर्षे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति-छवि देखी। पलकनहू परिहरी निमेषी॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन प्रेमवश जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥

दोहा—लता भवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमल विधु, जलद-पटल बिलगाइ॥

१स्यामल गौर सुभग दोउ बीरा। नील पीत जल जात शरीरा॥
काक पक्ष शिर सोहत नीके। गुच्छा बिच-बिच कुसुम-कली के॥
भाल-तिलक श्रमबिन्दु सुहाये। श्रवण सुभग भूषण छबि छाये॥
बिकट भृकुटि कच घुँघर वारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास विलास लेत मन मोला॥
मुख छबि कहि न जाहि मोहि पाहीं। जेहि बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उर मणि माल कम्बुकल ग्रीवा। काम कलभकर भुजबल सीवा॥
सुमन समेत वाम कर दोना। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना॥

दोहा—केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा शील निधान।
देखि भानु-कुल-भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान॥

धरि धीरज इक सखी सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप-किशोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सम्मुख दोउ रघुसिंह निहारे॥
नखशिख देखि राम की शोभा। सुमिरि पिता-प्रण मन अति क्षोभा॥
परबश सखिन लखी जब सीता। भई गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब इहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी इक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयो विलम्ब मातु भयमानी॥
धरि बड़ धीर राम उर आनी। फिरि आपन प्रण पितुबश जानी॥

दोहा—देखन मिसु मृग विहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर-छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि॥

सीता स्वयंवर

[धनुष यज्ञ में समस्त नृपों के असफल होने पर गुरु की आज्ञा से राम का धनुष तोड़ने जाना, रानी का सन्देह, चतुर सखी द्वारा उसका निराकरण, जानकी की व्याकुलता तथा अन्त में राम का धनुष तोड़ना, सीता का जयमाला पहिनाना।]

दोहा—उदित उदय-गिरि-मञ्च पर, रघुवर बाल पतङ्ग।
बिकसे सन्त सरोज-वन, हर्षे लोचन भृङ्ग॥

नृपन केरि आशा निशि नाशी। वचन नखत अवली न प्रकाशी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भये विशोक कोक मुनि देवा। वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुरु पद बन्दि सहित अनुरागा। राम मुनिन सन आयसु माँगा॥
सहजहि चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु कुंजर वर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भये सुखारी॥
बन्दि पितर सुर सुकृत सँभारे। जो कछु पुण्य प्रभाव हमारे॥
तौ शिव धनुष मृणाल की नाईं। तोरहिं राम गणेश गुसाईं॥

दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन समीप बुलाइ।
सीता मातु सनेह वश, वचन कहै बिलखाइ॥

सखि सब कौतुक देखन हारे। जोउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं॥
रावण बाण छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुँवर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधिगति कछु जाय न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवन्त लघु गणिय न रानी॥
कहँ कुँभज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुयश विदित संसारा॥
रवि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

दोहा—मंत्र परम लघु जासु वश, विधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, वश कर अंकुश खर्व॥

काम कुसुम-धनु-शायक लीन्हे। सकल भुवन अपने वश कीन्हे॥
देवि तजिय संशय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी॥
सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहिं बिलोकि वैदेही। सभय हृदय बिनवति ज्यहि तेही॥
मनही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेश भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई॥
गणनायक वरदायक देवा। आजु लगे कीन्हीं तव सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गरुता अति थोरी॥

दोहा—देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे-विलोचन-प्रेम-जल, पुलकावली शरीर॥

नीके निरखि नयन भरि शोभा। पितु प्रण सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
अहह तात दारुण हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध-समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ श्यामल मृदु गात किशोरा॥
विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन किमि बेधहि हीरा॥
सकल सभा की मति भइ भोरी। अब मोहि शम्भु चाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष युग सम चलि जाहीं॥

दोहा—प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधि मंडल डोल॥

गिरा-अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रकट न लाज निशा अवलोकी॥
लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपण कर सोना॥
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी॥
तन मन वचन मोर मन साँचा। रघुपति-पद-सरोज मन राँचा॥
तौ भगवान सकल उरवासी। करहिं मोहिं रघुपति की दासी॥
जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू॥
प्रभु तन चितै प्रेम प्रण ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे॥

दोहा—लखण लखेउ रघुवंश मणि, ताकेउ हरकोदण्ड।
पुलकि गात बोले वचन, चरण चापि ब्रह्मण्ड॥

दिश कुञ्जरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरणि धरि धीर न डोला॥
राम चहहिं शंकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥
चाप समीप राम जब आये। नरनारिन सुर सुकृत मनाये॥
सबकर संशय अरु अज्ञानू। मन्द महीपन कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गर्व गरुआई। सुर [illegible] केरि कदराई॥

सिय कर सोच जनक पछितावा। रानिन कर दारुण दुख दावा॥
शम्भु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई॥
राम बाहु बल सिन्धु अपारा। चहत पार नहिं कोउ कनहारा॥

दोहा—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितईं सीय कृपायतन, जानी बिकल बिशेषि॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कल्प सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करै का सुधा तड़ागा॥
का बर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछिताने॥
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिशेषी॥
गुरुहिं प्रणाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमक्यउ दामिनि जिमि घन लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छण मध्य राम धनु तोरा। भरेउ भुवन ध्वनि घोर कठोरा॥

छन्द—भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदण्ड भञ्जेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

सो०—शङ्कर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहु बल।
बूड़ी सकल समाज, चढ़ी जो प्रथमहिं मोहबश॥

प्रभु दोउ खण्ड चाप महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे॥
कौशिक-रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाह सुहावन॥
राम रूप राकेश निहारी। बढ़ी बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निशाना। देव बधू नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीशा। प्रभुहिं प्रशंसहिं देहिं अशीशा॥
बरसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग ध्वनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भञ्जेउ राम शम्भु धनु भारी॥

दोहा—बन्दी मागध सूत गण, बिरद बदहिं मति धीर ।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गज धन मणि चीर ॥

झाँझि मृदंग शंख सहनाई । भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई ॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाये । जहँ तहँ युवतिन मंगल गाये ॥
सखिन सहित हर्षित अति रानी । सूखत धान परा जनु पानी ॥
जनक लहउ सुख शोच बिहाई । पैरत थके थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥
सियहिय सुख बरनिय केहि भाँती । जनु चातकी पाये जल स्वाती ॥
रामहिं लखन बिलोकत कैसे । शशिहि चकोर किशोरक जैसे ॥
शतानन्द तब आयसु दीन्हा । सीता गमन राम पहँ कीन्हा ॥

दोहा—संग सखी सुन्दरि चतुर, गावहिं मंगलचार ।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥

सखिन मध्य सिय सोहति कैसी । छबिगण मध्य महाछबि जैसी ॥
कर-सरोज जयमाल सुहाई । विश्व-विजय शोभा जनु छाई ॥
तनु सकोच मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू ॥
जाय समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी ॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत युगल कर माल उठाई । प्रेम-विवश पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु युग जलज सनाला । शशिहि सभीत देत जयमाला ॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली । सिय जयमाल राम उर मेली ॥

सोरठा—रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरसहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रवि कुमुदगन ॥

कैकेयी-मन्थरा संवाद

[प्रस्तुत प्रकरण अयोध्याकाण्ड से संगृहीत है । राजा दशरथ के राम का राज्याभिषेक करने के निश्चय से जनता प्रसन्न हुई किन्तु मन्थरा को यह सहन न हुआ । उसने कैकेयी को भरना आरम्भ किया । पहले तो कैकेयी ने उसको दुत्कार

दिया, पर बाद में वह उसकी बातों में आगई और मन्थरा के कथनानुसार उसने चलने का निश्चय किया।]

दोहा—नाम मंथरा मन्द-मति, चेरि कैकेयी केरि।
अयश-पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥

देखि मंथरा नगर-बनावा। मंगल मंजुल बाजु बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उर दाहू॥
करै बिचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कौन विधि राती॥
देखि लागु मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती॥
भरत-मातु पहँ गई बिलखानी। का अनमनि-हसि हँसि कह रानी॥
उतर न देइ सो लेइ उसाँसू। नारि चरित करि ढारति आँसू॥
हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लखण सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि। छाँड़ै श्वास कारि जनु साँपिनि॥

दोहा—सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
भरत लखण रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर शाल॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई॥
रामहि छाड़ि कुशल केहि आजू। जाहि नरेश देत युवराजू॥
भा कौशल्यहि विधि अति दाहिन। देखत गर्व रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब शोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा॥
पूत विदेश न सोच तुम्हारे। जानति हौ बस नाह हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप-कपट-चतुराई॥
सुनि प्रिय-वचन मलिन-मन जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तो धरि जीभ कढ़ावौं तोरी॥

दोहा—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तेहि विशेष पुनि चेरि कहि, भरत-मातु मुसुकानि॥

प्रिय वादिनि सिख दीन्हेउँ तोहीं। स्वप्नेहु तो पर कोप न मोही॥
सुदिन सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जा दिन होई॥
ज्येठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥

राम-तिलक जो साचेहुँ काली । मागु देउँ मन भावत आली ॥
कौशल्या - सम सब महतारी । रामहिं सहज सुभाउ पियारी ॥
मोपर करहिं सनेह विशेषी । मैं करि प्रीत परीक्षा देखी ॥
जो विधि जन्म-देह करि छोहू । होहिं राम सिय पूत पतोहू ॥
प्राणते अधिक राम प्रिय मोरे । तिनके तिलक छोभ कस तोरे ॥

दोहा—भरत शपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव ।
हरष समय विस्मय करसि, कारण मोहिं सुनाव ॥

एकहि बार आश सब पूजी । अब कछु कहब जीह करि दूजी ॥
फोरै योग कपार अभागा । भलेउ कहत दुख रौरेहु लागा ॥
कहहिं झूँठ फुर बात बनाई । सो प्रिय तुमहिं करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर-सुहाती । नाहिं-त मौन रहब दिन राती ॥
करि कुरूप विधि परवश कीन्हा । बवा सो लुना पाव जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥
जारै योग स्वभाव हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ताते कछुक बात अनुसारी । छमब देवि बड़ चूक हमारी ॥

दोहा—गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि ।
सुर मायावश वैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि ॥

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । शबरी गान मृगी जनु मोही ॥
तस मति-फिरी अहै जस भावी । रहसि चेरि घात भलि फावी ॥
तुम पूछहु मैं कहत डराऊँ । धरेउ मोर घरफोरनि नाऊँ ॥
सजि-प्रतीति बहुविधि गढ़ि छोली । अवध साढ़साती तब बोली ॥
प्रिय सिय राम कहा तुम रानी । रामहि तुम प्रिय सो फुर बानी ॥
रहे प्रथम अब ते दिन बीते । समय फिरे रिपु होहिं पिरीते ॥
भानु कमल-कुल पोषनि हारा । बिनु जल जारि करै सो छारा ॥
जर तुम्हारि चह सवति उपारी । रूँधहु करि उपाइ वर बारी ॥

दोहा—तुमहिं न सोच सुहाग बल, निज वश जानहु राव ।
मन मलीन मुख मीठ नृप, राउर सरल स्वभाव ॥

चतुर-गँभीर राम-महतारी । बीच पाइ निज बात सँवारी ॥

पठये भरत भूप ननिऋौरे । राम मातु मत जानव रौरे ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके । गर्वित भरत-मातु बल पी के ॥
साल तुम्हार कौशिलहि माई । कपट चतुर नहिं होत लखाई ॥
राजहिं तुम पर प्रीति विशेषी । सवति स्वभाव सकै नहिं देखी ॥
रचि प्रपञ्च भूपहि अपनाई । राम-तिलक हित लगन धराई ॥
यहि कुल उचित राम कहँ टीका । सबहिंसुहाइमोहिं सुनि नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोहीं । दैव देव फल सो फिरि ओही ॥

दोहा—रचिपचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोध ।
कहेसि कथा शत सवति की जेहि विधि बाढ़ विरोध ॥

भावी वश प्रतीति उर आई । पूछि रानि निज शपथ दिवाई ॥
का पूछहु तुम अजहुँ न जाना । निजहित अनहित पशु पहिचाना ॥
भये पाख दिन सजत समाजू । तुम पायहु सुधि हम सन आजू ॥
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोष हमारे ॥
जो असत्य कछु कहब बनाई । तौ विधि देइहि हमहिं सजाई ॥
रामहि तिलक कालि जो भयऊ । तुम कहँ विपति-बीज विधि बयऊ ॥
रेखा खैंचि कहौं बलभाषी । भामिनि भयउ दूध की माखी ॥
जो सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

दोहा—कद्रू विनतहि दीन दुख, तुमहिं कौशला देव ।
भरत बन्दि-गृह सेइहैं, राम लषण कर नेव ॥

केकय-सुता सुनत कटु बानी । कहि न सकै कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जसु कांपी । कुबरी दशन जीह तब चांपी ॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी ॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाय कुपाठू । जिमि न नवै फिरि उकठा काठू ॥
फिरा कर्म प्रिय लागु कुचाली । बकिहि सराहत मनहुँ मराली ॥
सुन मथरा बात फुर तोरी । दहिन आँखि फरकत नित मोरी ॥
दिन प्रति देखौं राति कुसपने । कहौं न तोहि मोहवश अपने ॥
कहा करौं सखि शुद्ध सुभाऊ । दहिन बाम नहिं जानौं काऊ ॥

दोहा—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि-बार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह॥

नैहर जन्म भरब बरु जाई। जियत न करब सवति-सेवकाई॥
अरि बश दैव जिआवत जाही। मरण नीक त्यहि जियब न चाही॥
दीन वचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सुहाग तुम कहँ दिन दूना॥
जो राउर अस अनभल ताका। सो पाइहि यह फल परिपाका॥
जबते कुमति सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न यामिनि॥
पूछा गुणिन्ह रेख तिन खाँची। भरत भुआल होंइ यह साची॥
भामिनि करहु तौ कहौं उपाऊ। है तुम्हरी सेवा - बश राऊ॥
दोहा—परौं कूप तव वचन लगि, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हितलागि॥

कैकेयी की माँग

[दशरथ का कैकेयी से उसके सन्ताप का कारण पूछना, कैकेयी का दोनों वर माँगना, दशरथ का कैकेयी को समझाने का विफल प्रयत्न करना।]

दोहा—भूप मनोरथ सुभग वन, सुख सुविहग समाज।
भीलिनि जनु छाँड़न चहत, वचन भयंकर बाज॥

सुनहु प्राणपति भावति जी का। देहु एक वर भरतहिं टीका॥
माँगौं दूसर वर कर जोरे। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे॥
तापस वेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी॥
सुनि सो वचन भूप उर शोकू। शशि-कर छुअत विकल जिमि कोकू॥
गयउ सहमि कछु कहि नहिं आवा। जनु शचान वन झपटेउ लावा॥
विवरण भयउ निपट महिपालू। दामिनि मनहु हनेउ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि शोच लागु जनु सोचन॥
मोर मनोरथ सुरतरु-फूला। फरत करिणि जनु हनेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेयी। दीन्हेसि अचल विपति कै नेयी॥

दोहा—कवने अवसर का भयउ, गयउ नारि विश्वास।
योग-सिद्ध-फल-समय जिमि, यतिहिं अविद्या नास॥

इहि विधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥
भरत कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥
जो सुनि शर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु वचन सँभारे॥
देहु उतर अस कहहु कि नाहीं। सत्य-सिन्धु तुम रघुकुल माहीं॥
देन कह्यउ बर अब जनि देहू। तजहु सत्य जग अपयश लेहू॥
सत्य सराहि कह्यउ बर देना। जान्यहु लेइहि मागि चबेना॥
शिवि-दधीचि-बलि जो कछु भाषा। तनु धन तजेउ वचन प्रण राखा॥
अति कटु वचन कहति कैकेयी। मानहुँ लवण जरे पर देयी॥

दोहा—धर्म धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राउ।
शिर धुनि लीन्ह उसास अति, मारेसि मोहि कुठाउ॥

आगे दीख जरति रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी शान बनाई॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवन लेइहि मोरा॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी विनय न ताहि सुहाती॥
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहौं करि शंकर साखी॥
प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। भीत प्रतीति रीति करि घाती॥
अवशि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहैं सुनत बेगि दोउ भ्राता॥
सुदिन साधि सब साज सजाई। देहौं भरतहिं राज्य बड़ाई॥

दोहा—लोभ न रामहि राज्य कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट विचार करि, करत रहेउँ नृपनीति॥

राम-शपथ शत कहौं सुभाऊ। राम-मातु मोहि कहा न काहू॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। ताते परेउ मनोरथ छूछे॥
रिस परिहरि अब मंगल साजू। कछु दिन गये भरत युवराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस मांगा॥
अजहुँ हृदय दहत त्यहि आँचा। रिस परिहास कि साचहु साँचा॥

दहु तजि रोष राम अपराधू । सब कोउ कहै राम सुठि साधू ॥
तुम्ह सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहिं परम सन्देहू ॥
साधु स्वभाव अरिहु अनुकूला । सो किमि करहि मातु प्रतिकूला ॥

दोहा—प्रिया हास रिस परिहरहु, मांगु विचार विवेक ।
जेहि देखहुँ अब नयन-भरि, भरत-राज-अभिषेक ॥

चित्रकूट पर भरत आगमन

[भरत सम्पूर्ण जन समाज के साथ चित्रकूट पर राम से मिलने जाते हैं, लक्ष्मण को भरत पर कुटिलता का सन्देह होता है, राम भरत के प्रेम तथा सौजन्य की प्रशंसा करके लक्ष्मण के सन्देह को शान्त करते हैं। उधर भरत मन ही मन अपनी माता के कृत्य से सकुचित होते हैं।]

दोहा—नाथ सुहृद सुठि सरल चित, शील-सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान ॥

विषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोहवश होहिं जनाई ॥
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु-पद-प्रेम सकल जग जाना ॥
तेऊ आज राजपद पाई । चले धर्म मर्याद मिटाई ॥
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी । जानि राम बनवास इकाकी ॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू । आये करन अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आये दल बटोरि दोउ भाई ॥
जो जिय होति न कपट कुचाली । केहि सुहात रथ बाजि गजाली ॥
भरतहिं दोष देइ को जाये । जग बौराय राज्य-पद पाये ॥

दोहा—शशि गुरुतिय-गामी, नहुष चढ़े भूमिसुर यान ।
लोक वेद ते विमुख भा, अधम को वेणु समान ॥

सहस बाहु सुरनाथ त्रिशंकू । केहि न राज्यपद दीन्ह कलंकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु-ऋण रंच न राखौं काऊ ॥
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरेउ राम जानि असहाई ॥

तिमिर तरुण तरणिहि मकु गिलई । गगन-मगन मकु मेघहि मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटयोनी । सहस क्षमा बरु छाड़हि छोनी ॥
मशक फूँक बरु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमद भरतहि भाई ॥
लखण तुम्हारि शपथ पितु आना । शुचि सुबधु नहिं भरत समाना ॥
सुगुण क्षीर अवगुण जल ताता । मिले रचै परपच विधाता ॥
भरत हंस रविवंश तड़ागा । जनमि कीन्ह गुण-दोष विभागा ॥
गहि गुण पय तजि अवगुण वारी । निज यश जगत कीन्ह उजियारी ॥
कहत भरत गुण शील स्वभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

दोहा—सुनि रघुवरवाणी विबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ॥

जो न होत जग जन्म भरत को । सकल धर्मधुर धरणि धरत को ॥
कविकुल अगम भरत-गुण-गाथा । को जाने तुम बिन रघुनाथा ॥
लखण राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुख लहेउ न जाय बखानी ॥
यहाँ भरत सब सहित सुहाये । मदाकिनी पुनीत अन्हाये ॥
सरित समीप राखि सब लोगा । माँगि मातु गुरु सचिव नियोगा ॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई । साथ निषादनाथ लघुभाई ॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं । करत कुतर्क कोटि मन माहीं ॥
राम लखण सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥

दोहा—मातु मते महँ जानि मोहिं, जो कुछ करहि सो थोर ।
अघ अवगुण तजि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥

सीता हरण

[प्रस्तुत चौपाइयाँ 'मानस' के 'अरण्य काण्ड' से उद्धृत हैं । शूर्पणखा के फरियाद करने पर रावण का मारीच के पास जाना, उसको साथ लेकर पञ्चवटी पहुँचना, मारीच का सुवर्ण मृग बनना, रावण का सीता को हरना, मार्ग में जटायु द्वारा अवरोध, रावण-जटायु युद्ध, जटायु का घायल होना, रावण का सीता को लङ्का ले आकर अशोक वाटिका में रखना, यहाँ पर वर्णित है ।]

दोहा—नम पाछे धरि धावत, धरे शरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मोहिसन आन॥

सीता लखन सहित रघुराई। जेहि बन बसहिं मुनिन्ह सुखदाई॥
तेहि बन निकट दशानन गयऊ। तब मारीच कपट-मृग भयऊ॥
अति विचित्र कछु बरणि न जाई। कनक-देह मणि रचित बनाई॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेखा॥
सुनहु देव रघुवीर कृपाला। यहि मृग कर अति सुन्दर छाला॥
सत्य सन्ध प्रभु बध करि येही। आनहु चर्म कहा वैदेही॥
तब रघुपति जाना सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाधा। करतल चाप रुचिर शर साधा॥
प्रभु लक्ष्मणहि कहा समुझाई। फिरत विपिन निशिचर बहुराई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय विचारी॥

दोहा—अस कहि चले तहाँ प्रभु, जहाँ कपट मृग नीच।
सुर हरषित विस्मित जिमि, चातक वर्षा बीच॥

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए राम शरासन साजी॥
निगम-नेति शिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रकट कबहुँ दुरि जाई॥
प्रकटत दुरत करत छल भूरी। यहि विधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन शर मारा। धरणि परेउ करि घोर चिकारा॥
लक्ष्मण कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा॥
प्राण तजत प्रकटेसि निज देही। सुमिरेसि राम सहित वैदेही॥
अन्तर प्रेम तासु पहिचानी। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह भवानी॥

दोहा—विपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभु गुण गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ॥

मृग वधि तुरत फिरे रघुवीरा। सोह चाप कर कटि तूणीरा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लक्ष्मण सन परम सभीता॥
जाहु बेगि सङ्कट तब भ्राता। लक्ष्मण बिहँसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि विलास जासु लय होई। सपनेहु सङ्कट परै कि सोई।

सौंपि गये मोहिं रघुवर थाती । जो तजि जाउँ तोर नहिं छाती ॥
रह जिय जानि सुनहु मम माता । पूँछब कहब कवन मैं बाता ॥
मरम बचन जब सीता बोली । हरि प्रेरित लछमण मति डोली ॥
चहुँदिशि रेख लगाइ अहीशा । बारहिं-बार नाइ पद शीशा ॥
बन दिशि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावण शशि-राहू ॥
चितव लषण फिरि सीतहिं कैसे । तजत बरस निज मातहिं जैसे ॥

दोहा—एक डरत डर राम के, दूसर सीय अकेलि ।
लखण तेज तन हत भयो, जिमि बादी टववेलि ॥

सून भवन दशकंधर देखा । आवा निकट यती के बेखा ॥
जाके डर सुर असुर डराहीं । निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दशशीश श्वानकी नाईं । इत उत चितइ चला भँड़िहाई ॥
जिमि कुपन्थ पग देत खगेशा । रह न तेज तन बुधि लवलेशा ॥
करि अनेक विधि छल चतुराई । माँगेसि भीख दशानन आई ॥
अतिथि जानि सिय कन्द मूलफल । देन लगी तेहँ कीन्ह बहुरि छल ॥
कह दशमुख सुन सुन्दरि बानी । बाँधी भीख न लेउँ सयानी ॥
विधिगति बाम काल कठिनाई । रेख लाघि सिय बाहर आई ॥

दोहा—विश्वभरनि अघदल दलनि, करनि सकल सुरकाज ।
जाना नहिं दशशीश तेहि, मूढ़ कपट के साज ॥

नाना विधि कहि कथा सुनाई । राजनीति भय प्रीति दिखाई ॥
कह सीता सुनु यती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥
तब रावण निज रूप दिखावा । भइ सभीत जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा । आवत' प्रभु रे खल रहु ठाढ़ा ॥
जिमि हरिबधुहिं छुद्र शश चाहा । भयसि कालवश निशिचर नाहा ॥
बायस कर चह खगपति समता । सिन्धु समान होइ किमि सरिता ॥
खरिकि होइ सुरधेनु समाना । काशि भवन निज सुनु अशाना ॥
सुनत बचन दशशीश लजानी । मनमहँ चरण बन्दि सुख माना ॥

दोहा—क्रोधवन्त तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाइ ।
चला गगन पथ आतुर, भय वश हाकि न जाइ ॥

हा जगदीश देव रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरत हरण शरण सुखदायक। हा रघुकुल-सरोज-दिननायक॥
हा लछमण तुम्हार नहिं दोसा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥
कैकेयी मन जो कछु रहेऊ। सो बिधि आजु मोहि दुख दयऊ॥
पञ्चवटी के खग मृग जाती। दुखी भये बनचर, बहु-भाँती॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि, सनेही॥

दोहा—बहुबिधि करत बिलाप नभ, लिये जात दससीश।
हरत न खल बर पाइ मल, जो दीन्हो अवनीश॥

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीताकर बिलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी॥
गृध्रराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
अधम निशाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छवश कपिला-गाई॥
अहह प्रथम बल मम तनु नाहीं। तदपि जाइ देखौं बल ताहीं॥
सीता पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं यातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवन्त खग कैसे। छूटे पवि पर्वत पर जैसे॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलसि न जानेसि मोही॥
आवत देखि कृतान्त समाना। फिरि दशकन्ध करत अनुमाना॥
की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू येहा। मम करतीरथ छाड़िहि देहा॥

दोहा—मम भुजबल नहिं जानत, आवत तजिन्हि सहाइ।
समर चढ़े तो इहि हतौं, जियत न निज थल जाइ॥

सुनत गृध्र क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा॥
तजि जानकी कुशल गृह जाहू। नाहिं त सत्य मुनहु बहुबाहू॥
राम रोष पावक अति घोरा। होइहि शलभ सकल कुल तोरा॥
उतर न देत दशानन-योधा। तबहिं गृध्र धावा करि क्रोधा॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहिं राखि गृध्र पुनि फिरा॥
दशमुख ठठि कृतशर सधाना। गृध्र आइ काटेउ धनु बाना॥
चोंचन मारि बिदारेसि देही। दण्ड एक भइ मूर्छा तेही॥

दोहा—जेइ रावण निज वश किये, मुनिगण सिद्धि सुरेश ।
तेइ रावणसम समर अति, धीर वीर खगेश ॥

स्वस्थ भये सो पुनि उठिधावा । मोर गृध्र नहिं सन्मुख आवा ॥
कीन्हेसि बहु जब युद्ध खगेशा । थकित भयो तब जरठ गिधेशा ॥
तब सक्रोध निशिचर खिसियाना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरणी । सुमिरि राम की अद्भुत करणी ॥
मन महँ गृध्र परम सुख माना । राम काज मम लागे प्राना ॥
सीतहि यानि चढ़ाय बहोरी । चला उतायल त्रास न थोरी ॥
करति विलाप जाति नभ सीता । व्याधविवश जनु मृगी सभीता ॥
गिरि पर बैठे कपिन निहारी । कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी ॥
यहिविधि सीतहि सो लै गयऊ । वन अशोक मँह राखत भयऊ ॥

दोहा—हारि परा खल बहुत विधि, भय और प्रीति दिखाइ ।
तब अशोक पादप तरे, राखेसि यतन कराइ ॥

वर्षा और शरद् ऋतु वर्णन

[प्रस्तुत चौपाइयाँ 'किष्किंधा काण्ड' से संग्रहीत हैं । बालि के मरने पर सुग्रीव के अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर विलास में मग्न होने पर राम का लक्ष्मण के साथ प्रवर्षण गिरि पर निवास करना, वहीं पर रहते हुए पहिले वर्षा ऋतु का तथा बाद में शरद् ऋतु का लक्ष्मण के प्रति वर्णन करना, सीता के विरह में अपनी व्यथा का प्रदर्शन करना, प्रस्तुत अंश में वर्णित है । वर्षा तथा शरद् का अत्यन्त सुन्दर तथा मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है ।]

दोहा—लक्ष्मण देखहु मोर गण, नाचत वारिद पेखि ।
गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्त कहँ देखि ॥

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं । खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि नियराये । यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बूंद अघात सहैं गिरि कैसे । खल के वचन संत सह जैसे ॥

छुद्र नदी भरि चलि उतराई । जिमि थोरे धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी । जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥
सिमिटि-सिमिटि जल भरें तलावा । जिमि सद्‌गुण सज्जन पहँ आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई । होय अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

दोहा—हरित भूमि तृण सकुल, समुझि परे नहिं पन्थ ।
जिमि पाखण्ड विवाद तें लुप्त भये सद्‌ग्रन्थ ॥

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई । वेद पढ़े जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भे विटप अनेका । साधु के मन जस मिले विवेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत पन्थ मिलहि नहिं धूरी । करै क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी की सम्पति जैसी ॥
निशितम-घन खद्योत विराजा । जिमि दम्भिन कर जुरा समाजा ॥
महावृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतंत्र ह्वै बिगरें नारी ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहि पाय जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊसर बरसै तृण नहिं जामा । सन्त हृदय जस उपज न कामा ॥
विविध जन्तु सकुल महि भ्राजा । बढ़ै प्रजा जिमि पाय सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रियगण उपजे ग्याना ॥

दोहा—कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म नशाहिं ॥
कबहुँ दिवस महँ निबिततम, कबहुँक प्रकट पतङ्ग ।
उपजे विनशै ज्ञान जिमि, पाइ सुसङ्ग कुसङ्ग ॥

वर्षा विगत शरद ऋतु आई । देखहु लक्ष्मण परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु वर्षाकृत प्रकट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्त्य पन्थ जल शोषा । जिमि लोभहिं शोषै सन्तोषा ॥
सरिता सर जल निर्मल सोहा । सन्तहृदय जस गतमदमोहा ॥
रस रस शोष सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥

जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाय समय जिमि सुकृत सुहाये ॥
पंक न रेणु सोह अस धरणी । नीति निपुण नृप की जस करणी ॥
जल सकोच विकल भये मीना । निविध कुटुम्बी जिमि धन हीना ॥
बिन घन निर्मल सोह आकाशा । जिमि हरिजन परिहर सब आशा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शरद-ऋतु थोरी । कोउ इक पाव भक्ति जिमि मोरी ॥

दोहा—चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ।
जिमि हरिभक्ति पाय श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा । जिमि हरि शरण न एकौ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसे । निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे ॥
गुंजत मधुकर निकर अनूपा । सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥
चकवाक मन दुख निशि पेखी । जिमि दुर्जन पर-सम्पति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहै न शंकरद्रोही ॥
शरदातप निशि शशि अपहरई । सन्त दरश जिमि पातक टरई ॥
देखहिं विधु चकोर समुदाई । चितवहिं हरिजन हरि जिमि पाई ॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा । जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा ॥

दोहा—भूमि जीव सकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय ।
सद्गुरु मिलेने जाहि जिमि, संशय भ्रम समुदाय ॥

रावण शुक संवाद और सेतुबन्ध

[प्रस्तुत प्रकरण 'सुन्दर काण्ड' से लिया गया है। लक्ष्मण का रावण को उसके दूत शुक द्वारा पत्र भेजना, रावण का दम्भ, शुक का रावण को समझाने का प्रयास करना तथा अन्त में रावण द्वारा निर्वासित होना। उधर राम का सागर से मार्ग देने की प्रार्थना करना, अन्त में विनय से काम न चलता देखने पर क्रुद्ध होकर समुद्र को अग्निबाण से सुखा देने की कामना करना, समुद्र का भयभीत होकर राम की शरण में आना, तथा अपने ऊपर सेतु बाँधने का उपाय बतलाना, आदि घटनाएं इस अंश में वर्णित है।]

दोहा—बातन मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम विरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईस॥
छोड़ मान तजि अनुज इव, प्रभु-पद-पंकज-भृङ्ग।
होसि रामशर अनल खल, जनि कुल सहित पतङ्ग॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दशानन सबहिं सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस-कर बाग विलासा॥
कह शुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम-सन तजहु विरोधा॥
अति कोमल रघुबीर स्वभाऊ। यद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा प्रभु तुम पर करिहैं। उर अपराध न एको धरिहैं॥
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै। इतना कहा मोर प्रभु कीजै॥
जब तेहि कहेउ देन वैदेही। चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही॥
चरणनाय शिर चला सो तहँवा। कृपासिंधु रघुनायक जहँवा॥
करि प्रणाम निज कथा सुनाई। राम कृपा आपनि गति पाई॥
ऋषि अगस्त्यकर शाप भवानी। राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी॥
बन्दि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहँ पगुधारा॥

× × × ×

दोहा—विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिन होय न प्रीति॥

लक्ष्मण बाण शरासन आनू। शोषौं वारिधि विशिख कृशानू॥
शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपण सन सुन्दर नीती॥
ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधहिं शम कामिहिं हरिकथा। ऊसर बीज बये फल यथा॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लक्ष्मण के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु विशिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर-ज्वाला॥
मकर उरग झष गण अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने॥
कनकथार भरि मणिगण नाना। विप्र रूप आये तजि माना॥

दोहा—काटे पै कदली फरै, कोटि यतन करि सींच।
विनय न मान खगेश सुन, डाटेहिं पै नव नीच॥

समय सिंधु ; गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी । इनकी नाथ सहज जड़ करनी ॥
तव प्रेरित माया उपजाये । सृष्टि-हेतु सब ग्रन्थन गाये ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहही । सो तेहि भाँति रहे सुख लहही ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहिं सिख दीन्ही । मर्यादा सब तुम्हरी कीन्हीं ॥
ढोल गँवार, शूद्र पशु नारी । ये सब ताड़न के अधिकारी ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई । सोइ करहु जो तुमहि सोहाई ॥

दोहा—सुनत विनीत वचन अति, कह कृपाल मुसकाय ।
जेहि विधि उतरै कपि कटक, तात सो करहु उपाय ॥

"नाथ नील नल कपि दोउ भाई । लरिकाई ऋषि आशिष पाई ॥
सरिता निकट रहे मुनि छाई । करहि उपद्रव तहँ दोउ जाई ॥
आँख मूँद मुनि ध्यान लगावैं । तब ये ठाकुर को ले जावैं ॥
सो जल में सब देहिं डुबाई । तब मुनि शाप दियो रिसि आई ॥
प्रस्तर छुआ तुम्हार जो होई । पानी पै उतरावै सोई ॥
थिर रहे चलै सो नाहीं । तब यह कछु समझे मन माहीं ॥
तिन परश किये गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । करिहौं बल अनुमान सहाई ॥
यहि विधि नाथ पयोधि बँधाई । जिहि यह सुयश लोकतिहुँ गाई ॥
यहि शर मम उत्तर तट वासी । हतहु नाथ खल गण अघरासी ॥"
सुनि कृपालु सागर मन पीरा । तुरतहिं हरी राम रणधीरा ॥
देखि राम, बल पौरुष भारी । हर्षि पयोनिधि भयो सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा । चरण वन्दि पाथोधि सिधावा ॥

छन्द—निज भवन गवनेउ सिन्धु श्री रघुवीर यह मत भायऊ ।
यह चरित कलिमल हरण जसमति दास तुलसी गायऊ ।
सुख-भवन संशय-शमन दमन विषाद रघुपति गुणगना ।
तजि सकल आश भरोस गावहिं सुनहिं सतत शुचिमना ॥

दोहा—सकल सुमङ्गल दायक, रघुनायक गुण गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान ॥

राम का अभियान और रावण की मन्त्रणा

[प्रस्तुत चौपाइयाँ 'लङ्का काण्ड' से उद्धृत हैं । राम के सेतु बाँधकर लङ्का पर चढ़ाई कर देने से नगर में हाहाकार मच जाना, रावण का व्याकुल होकर महलों में जाना, मन्दोदरी का रावण को फिर से सुपथ पर लाने का व्यर्थ प्रयास करना, रावण का सभा में बैठकर सुरामर्दी मन्त्रियों से विचार विमर्श करना आदि घटनाएं यहाँ वर्णित हैं ।]

दोहा—सेतुबन्धु मइ भीर अति, कपि नभ पन्थ उड़ाहिं ।
अपर-जल-चरनि-उपरि-चढ़ि, बिनु श्रम पारहिं जाहिं ॥

यह कौतुक विलोकि दोउ भाई । बिहँसि चले कृपालु रघुराई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा । कहि न जात कछु यूथप भीरा ॥
सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा । सकल कपिन कहँ आयसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाये । सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये ॥
सब तरु फले राम हित लागी । ऋतु अनऋतुहि कालगति त्यागी ॥
खाहिं मधुर फल विटप हिलावहिं । लङ्का सन्मुख शिखर चलावहि ॥
जहँ कहुँ फिरत निशाचर पावहि । घेरि सकल मिलि नाच नचावहिं ॥
दशननि काटि नासिका काना । कहि प्रभु सुयश देहिं तब जाना ॥
जिनकर नासा कान निपाता । तिन रावणहिं कही सब बाता ॥
सुनत श्रवण वारिधि बधाना । दशमुख बोलि उठा अकुलाना ॥

दोहा—बाँधेउ जल-निधि नीर-निधि, जलधि सिंधु वारीश ।
सत्य तोयनिधि पकनिधि, उदधि पयोधि नदीश ॥

व्याकुलता निज समुझि बहोरी । बिहँसि चला गृह करि भय थोरी ॥
मन्दोदरी सुना प्रभु आये । कौतुकही पायोधि बँधाये ॥
कर गहिं पतिहि भवन निज आनी । बोली परम मनोहर बानी ॥
चरण नाइ शिर अचल रोपा । सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ॥

नाथ बैर कीजै ताही सों । भुज बल जीति सकिय जाही सों ॥
तुमहिं रघुपतिहिं अंतर कैसा । खल खद्योत दिनकर जैसा ॥
अति बल मधु कैटभ जिन मारे । महावीर दिति सुत संघारे ॥
जेहि बलि बाँधि सहसभुज मारा । सोइ अवतरेउ हरण महि भारा ॥
तासु विरोध न कीजिय नाथा । काल कर्म गुण जिनके हाथा ॥

दोहा—रामहि सौंपहु जानकी, नाइ कमल-पद माथ ।
सुत कहँ राज्य देइ, बन जाइ भजहु रघुनाथ ॥

नाथ दीन-दयालु रघुराई । बाघो सम्मुख गये न खाई ॥
चाहिय करण सो सब करि बीते । तुम सुर असुर चराचर जीते ॥
वेद कहहिं अस नीति दशानन । चौथेपनहिं जाइ नृप कानन ॥
तासु भजन कीजिय तहँ भर्ता । जो कर्ता पालक संहर्ता ॥
सोइ रघुवीर प्रणत अनुरागी । भजहु नाथ ममता मद त्यागी ॥
मुनिवर यत्न करहिं जेहि लागी । भूप राज्य तजि होहिं विरागी ॥
सोइ कोशलाधीश रघुराया । आये करन तोहि पर दाया ॥
जो पिय मानहु मोर सिखावन । होइहि सुयश तिहूँ पुर पावन ॥

दोहा—अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कंपित गात ।
नाथ भजहु रघुनाथ पद, मम अहिवात न जात ॥

तब रावण मयसुता उठाई । कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तैं प्रिया मृषा भय माना । जग योधा को मोहि समाना ॥
वरुण कुबेर पवन यम काला । भुजबल जितेहुँ सकल दिकपाला ॥
देव दनुज नर सब वश मोरे । कवन हेतु भय उपजा तोरे ॥
नाना विधि कहि तेहि समुझाई । सभा बहोरि बैठि सो जाई ॥
मन्दोदरी हृदय अस जाना । काल विवश उपजा अभिमाना ॥
सभा जाइ मंत्रिन अस बूझा । करिय कवन विधि रिपुसन जूझा ॥
कहहिं सचिव सुनि निशिचर नाहा । बार बार प्रभु पूछत काहा ॥
कहहु कवन भय करत विचारा । नर कपि भालु अहार हमारा ॥

दोहा—वचन सबन के श्रवण सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि ।
नाथ विरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन मति अति थोरि ॥

कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती । नाथ न मल होइहि यहि भाँती ॥
बारिधि लाँघि एक कपि आवा । तासु चरित मन महँ सब गावा ॥
छुधा न रही तुमहिं सब काहू । जारत नगर न सकि धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगे दुख पावा । सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा ॥
जो बारीश बँधायउ हेला । उतरे कपिदल सहित सुवेला ॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई । वचन कहहु सब गाल फुलाई ॥
सुनि मम वचन तात अति आदर । जनि मन गुणहु मोहिं कहि कादर ॥
प्रिय बाणी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे जग निकाय नर अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे । कहहि सुनहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती । सीतहिं देइ करिय पुनि प्रीती ॥

दोहा—नारि पाइ फिरि जाहिं जो, तौ न बढ़ाइय रार ।
नाहिं तो सन्मुख समर महँ, नाथ करिय हठ मार ॥

रावण के दरबार में अङ्गद

[राम का युद्ध छेड़ने से पूर्व मंत्रियों के परामर्श के अनुसार अङ्गद को दूत बनाकर भेजना, अङ्गद को देखकर नगरवासियों में भय का सञ्चार होना, अङ्गद का रावण के बेटे को युद्ध में परास्त करना, अङ्गद का रावण के समझाने की चेष्टा करना ।]

सो०—फूले फलै न बेत, यदपि सुधा बर्षहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥

इहाँ प्रात जागे रघुराई । पूँछा मत सब सचिव बुलाई ॥
कहहु बेगि का करिय उपाई । जाम्बवन्त कह पद सिर नाई ॥
सुनु सर्वज्ञ सकल उरवासी । सर्वरूप सब रहित उदासी ॥
मन्त्र कहउ निज मति अनुसारा । दूत पठाइय बालि कुमारा ॥
नीक मन्त्र सबके मन माना । अङ्गद सन कह कृपा निधाना ॥
बालितनय बुधिबल गुण धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥
बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊँ । परम चतुर मैं जानत अहऊँ ॥
काज हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥

सो०—प्रभु आज्ञा धरि शीश, चरण वन्दि अङ्गद कहेउ ।
सोइ गुणसागर ईश, राम कृपा जा पर करहु ॥
स्वयं सिद्धि सब काज, नाथ मोहिं आदर दयउ ।
अस विचारि युवराज, तनु पुलकित हर्षित भयउ ॥

बंदि चरण उर धरि प्रभुताई । अङ्गद चलेउ सबहिं शिर नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज अशंका । रण बाँकुरा बालि सुत बंका ॥
पुर पैठत रावण कर बेटा । खेलत रहा सो होइगइ भेंटा ॥
बातहिं बात कर्ष बढ़ि आई । युगल अतुल बल पुनि तरुणाई ॥
तेहि अङ्गद कहँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भ्रमाई ॥
निशिचर निकरि देखि भटमारी । जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥
एक एक सन मर्म न कहहीं । समुझि तासु बल चुप होइ रहहीं ॥
भयउ कोलाहल नगर मँझारी । आवा कपि लंका जेइ जारी ॥
अबधौं कहा करिहि करतारा । अति सभीत सब करहिं विचारा ॥
बिन पूछे मगु देहिं बताई । जेहि विलोकि सोइ जाइ सुखाई ॥

दोहा—गयो सभा दरबार रिपु, सुमिरि राम पदकंज ।
सिंह ठवनि इत उत चितै, धीर वीर बल-पुंज ॥

तुरत निशाचर एक पठावा । समाचार रावणहिं सुनावा ॥
सुनत बचन बोलेउ दशशीशा । आनहु बोलि कहाँकर कीशा ॥
आयसु पाइ दूत बहु धाये । कपि-कुंजरहि बोलि लै आये ॥
अङ्गद दीख दशानन कैसा । सहित प्राण कज्जल-गिरि जैसा ॥
भुजा विटप शिर श्रृङ्ग समाना । रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कन्दरा खोह अनुमाना ॥
गयउ सभा मन नेकु न मुरा । बालितनय अति बलबाँकुरा ॥
उठी सभा सब कपि कहँ देखी । रावण उर भा क्रोध ॥

दोहा—यथा मत्त-गज-यूथ महँ, पंचानन चलि
राम प्रताप सँभारि उर, बैठि सबहिं शिर

कह दशकन्ध कवन तैं बन्दर । मैं रघुवीर
मन जनकहि सोहि रही मिताई । तब हित

उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती । शिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ।
बर पायउ कीन्हेउ सब काजा । जीतेहु लोकपाल सुरराजा ।
नृप अभिमान मोहवश किम्वा । हरि आनेहु सीता जगदम्बा ।
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा । सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा ।
दसन गहहु तृण कण्ठ कुठारी । पुरजन सङ्ग सहित निज नारी ।
सादर जनक सुता करि आगे । इहि विधि चलहु सकल भय त्यागे ।

दोहा—प्रणतपाल रघुवंस मणि, त्राहि त्राहि अब मोहिं ।
सुनतहि आरत वचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं ।।

[अङ्गद का रावण को समझाने का प्रयास करना, रावण का उपेक्षा करना, उसकी गर्वोक्तियों को सुनकर के अङ्गद का सभा में अपना पैर जमा देना, उस पैर को हिलाने में भी निशाचरों का असमर्थ होना, रावण का लज्जित होना, अङ्गद का लौटकर राम के पास आना ।]

सो०—सो नर क्यों दसकन्ध, बालि बधेउ जेहि एक शर ।
बीसहु लोचन अन्ध, धिक तव जन्म कुजाति जड़ ।।
तव शोणित की प्यास, तृषित राम-सायक-निकर ।
तजउँ तोहिं तेहि त्रास, कटु जल्पसि निशिचर अधम ।।

मैं तव दसन तोरिबे लायक । आयसु पै न दीन्ह रघुनायक ।।
अस रिस होत दसों मुख तोरौं । लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ।।
गूलर-फल-समान तव लंका । बसहिं मध्य तुम जन्तु अशंका ।।
मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ।।
उक्ति सुनत रावण मुसकाई । मूढ़ सिखेसि कहँ बहुत झुठाई ।।
बालि कबहुँ अस गाल न मारा । मिलि तपसिन तैं भयसि लबारा ।।
साँचहु मैं, लबार भुजबीहा । जौ न उपारौं तव दस जीहा ।।
राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा । सभा माँझ प्रण करि पद रोपा ।।
जो मम चरण सकसि शठ टारी । फिरहिं राम सीता मैं हारी ।।

सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरणि पछारहु कीसा॥
इन्द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिं करि बल विपुल उपाई। पद न टरै बैठहिं शिर नाई॥
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीश चरण इहि भाँती॥
पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकहिं उपारी॥

दोहा—भूमि न छांड़हि कपि चरण, देखत रिपुमद भाग।
कोटि विघ्न जिमि सन्त कहँ, तदपि नीति नहिं त्याग॥

कपिबल देखि सकल हिय हारे। उठा आप कपि के परचारे॥
गहत चरण कह बालिकुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा॥
गहसि न राम-चरण शठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयो तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि शशि न सोहई॥
सिंहासन बैठा शिरनाई। मानहु सम्पति सकल गँवाई॥
जगदाधार प्राणपति रामा। तासु विमुख किमि लह विश्रामा॥
उमा राम कर भृकुटि विलासा। होइ विश्व पुनि पावै नाशा॥
तृण ते कुलिश कुलिश तृण करहीं। तासु दूतपद कहु किमि टरहीं॥
पुनि कपि कही नीति विधि नाना। मानत नाहिं काल नियराना॥
रिपु-मद-मथि प्रभु सुयश सुनाये। अस कहि चले बालिनृपजाये॥
अबहीं सुर का करौं बड़ाई। हतिहौं तोहिं खेलाइ खेलाइ॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावण भयो दुखारा॥
यातुधान अंगद पन देखी। भे व्याकुल अति हृदय विशेखी॥

दोहा—रिपुबल धर्षि हर्षि हिय, बालि तनय बल पुञ्ज।
सजल नयन तन पुलक अति, गहे राम पद कञ्ज॥

राम-रावण युद्ध

[प्रस्तुत प्रकरण में रावण का सेना सजाकर युद्ध की भीषणता, राम को पैदल तथा रावण को रथ में देख लिए रथ भेजना, राम का रथ पर चढ़ कर से घटनाएँ वर्णित हैं।]

दोहा—हर्षें देव विलोकि छवि, बरषहिं सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुण ज्ञान बल, धाम हरण महिभार॥

इहि के बीच निशाचर अनी। कसमसाति आई अति घनी॥
देखि चले सम्मुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जिमि घनघट्टा॥
शक्ति शूल तरवारि चमकहिं। जनु दश दिशि दामिनी दमकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जत मनहु बलाहक घोरा॥
कपि लंगूर विपुल नभ छाये। मनहु इन्द्र धनु उयउ सुहाये॥
उठी रेणु मानहु जलधारा। बाणबुन्द भइ वृष्टि अपारा॥
दुहुँ दिशि पर्वत करहि प्रहारा। वज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बाण झरि लाई। घायल भे निशिचर-समुदाई॥
लागत बाण वीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि अगणित महि परहीं॥
स्रवहिं शैल जनु निर्झर वारी। शोणित सरि कादर भयकारी॥

छन्द—कादर भयङ्कर रुधिर-सरिता चादि परम अपावनी।
दोउ-कूल-दल रथ-रेत चक्र-अवर्त बहति भयावनी।
जलजन्तु गज पदचर तुरँग रथ विविध वाहन को गने।
शर शक्ति तोमर सर्प चाप-तरंग चर्म-कमठ घने।

दोहा—वीर परे जनु तीर तरु, मज्जा बहु जनु फेन।
कादर देखत डरहिं जिय, सुभटन के मन चैन॥

मज्जहिं भूत प्रेत वैताला। केलि करहिं योगिनी कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। इकते एक छीनि धरि खाहीं॥
एक कहहिं ऐसेहु समुदाई। शठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे॥
खैंचत आँत गीध तट भये। जनु बनसी खेलत चित दये॥
बहुभट बहे चढ़े खग जाहीं। जिमि नावरि खेलहिं जल माहीं॥
योगिनि भरि भरि खप्पर साजहिं। भूत-पिशाच-बधू नभ नाचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुण्डा नाना विधि गावहिं॥
जम्बुक निकर कटक कटकहीं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपटहीं॥
कोटिन रुण्ड-मुण्ड बिन डोलहिं। शीश परे महि जयजय बोलहिं॥

छन्द—बोलहिं जो जयजय रुण्ड-मुण्ड प्रचण्ड शिर बिन धावहीं।
खप्परन खग्गन अरुभि जूझहिं सुभट सुरपुर पावहीं।
निशिचर वरूथ विमर्दि गर्जहिं भालु कपि दर्पित भये।
संग्राम आगन सुभट सोवहिं राम शर निकरन हये॥

सो०—सप्त दिवस दिन रात, बाजेउ घंटा धनुष कर।
हरि पूजा की भाँत, भये सुभट संहार सब॥

दोहा—घंटा को परमान अब, सुनिये समर बीच।
नाग अयुत दश लाख हैं, रथी डेढ़ शत मीच॥

मरहिं कोटि दश पैदर जबहीं। नाचत एक कबंध रण तबहीं॥
नृत्य करहिं जब कोटि कबन्धा। तब इक खेचर उठत निबंधा॥
खेचर कोटि नचहिं निधकटा। तब इक धनुकर बाजत घंटा॥

श्लोक—एवं सप्त दिनव्यात, स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
भवेद्भूरि भट नाश, राम रावण संगरे॥

दोहा—हृदय विचारेसि दशवदन, भा निशिचर संहार।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार॥

[illegible]न प्रभुहिं पयादे देखा। उर उपजा अति छोभ विशेखा॥
[illegible]पति निजरथ तुरत पठावा। हर्ष सहित मातलि लै आवा॥
[illegible]जपुञ्ज रथ दिव्य अनूपा। विहँसि चढ़े कोशलपुरभूपा॥
[illegible]ञ्चन तुरँग मनोहर चारी। अजर अमर मानस गति कारी॥
[illegible]थारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाये कपि बल पाय विशेखी॥
[illegible]टी न जाय कपिन की मारी। तब रावण माया विस्तारी॥
[illegible] माया रघुबीरहिं बाची। सब काहू मानी करि सांची।
[illegible]खी कपिन निशाचर अनी। अनुज सहित बहु कोशल [illegible]

छन्द—बहु राम लछमण देखि मर्कट भालु मन अति [illegible]
जनु चित्र लिखित समेत लछमण जहँ [illegible]
निज सेन चकित बिलोकि हँसि शर [illegible]
माया हरी हरि निमिष महँ हरषी [illegible]

दोहा—बहुरि राम सब तन चितै, बोले बचन गँभीर ।
द्वन्द युद्ध देखहु सकल, श्रमित भये सब बीर ॥

विजेता राम का अभिनन्दन

[प्रस्तुत चौपाइयाँ मानस के 'उत्तर काण्ड' से संगृहीत हैं। चौदह वर्ष व्यतीत होने पर अवधवासियों का राम की प्रतीक्षा में व्याकुल होना, राम के आदेशानुसार हनुमान का भरत को उनके आगमन का सन्देश देना, भरत का यह शुभ समाचार गुरु इत्यादि नगरवासियों को सुनाना, तथा नगर वासियों का अत्यधिक प्रसन्न होकर राम का स्वागत करने को एकत्र होना, आदि घटनाएँ यहाँ वर्णित हैं ।]

दोहा—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुरलोग ।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृशतन रामवियोग ॥
शकुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केरि ।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँफेर ॥
कौशल्यादिक मातु सब, मन अनन्द अस होइ ।
आये प्रभु सिय-अनुज-युत, कहन चहत अब कोइ ॥
भरत नयन भुज दच्छिण, फरकहिं बारहिं बार ।
जानि शकुन मन हर्ष अति, लागे करन विचार ॥

रहा एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भयो अपारा ॥
कारण कौन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसरायउ ॥
अहह धन्य लक्ष्मण बड़ भागी । रामपदारविन्द अनुरागी ॥
कपटी कुटिल नाथ मोहि चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥
जो करणी समुझै प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कल्पशत कोरी ॥
जन अवगुण प्रभु मान न काऊ । दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ ॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं राम शकुन शुभ होई ॥
बीते अवधि रहे जौ प्राना । अधम कौन जग मोहि समाना ॥

दोहा—राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत ।
विप्ररूप धरि पवनसुत, आय गये जिमि पोत ॥

बैठे देखि कुशासन, जटा-मुकुट कृशगात ।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात ॥

देखत हनूमान अति हरषेउ । पुलक गात लोचन जल बरषेउ ॥
मनमहँ बहुत भाँति सुख मानी । बोलेउ श्रवण सुधासम बानी ॥
जासु विरह सोचहु दिन राती । रटहु निरन्तर गुणगण पाँती ॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता । आये कुशल देव मुनि त्राता ॥
रिपु रण-जीत सुयश सुर गावत । सीता अनुज सहित प्रभु आवत ॥
सुनत वचन बिसरे सब दूखा । तृषा मिटे जिमि पाय पियूषा ॥
को तुम तात कहाँ ते आये । मोहि परमप्रिय वचन सुनाये ॥
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना । नाम मोर सुनु कृपानिधाना ॥
दीनबन्धु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटे अति सादर ॥
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥
कपि तव दरश सकल दुख बीते । मिले आज मोहि राम सप्रीते ॥
बार बार पूँछी कुशलाता । तो कहँ कहा देउँ सुनु भ्राता ॥
यहि सन्देश सरिस जगमाहीं । करि विचार देखेउँ कछु नाहीं ॥
नाहि न उरिन तात मैं तोही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥
तब हनुमान नाय पद माथा । कही सकल रघुपति गुण गाथा ॥
कहु कपि कबहु कृपालु गुसाईं । सुमिरत मोहि दास की नाईं ॥

छन्द—निज दास ज्यों रघुवंश भूषण कबहुँ मम सुमिरन कर्यो ।
सुनि भरत वचन विनीत अति कपि पुलकि तनु चरणन पर्यो ॥
रघुवीर निज मुख जासु गुणगण कहत अगजग नाथ जो ।
काहे न होइ विनीत परम पुनीत सद्गुणसिन्धु सो ॥

दोहा—राम-प्राण-प्रिय नाथ तुम, सत्य वचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सन, प्रेम न हृदय समात ॥

सोरठा—भरत चरण शिर नाय, तुरत गयो कपि राम पहँ ।
कही कुशल सब जाय, हर्षि चले प्रभु यान चढ़ि ॥

हर्षि भरत कोशलपुर आये । समाचार सब गुरुहि सुनाये ॥
पुनि मन्दिर महँ बात जनाई । आवत नगर कुशल रघुराई ॥

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं
समाचार पुरवासिन पाये। नर अरु नारि हर्षि उठि धाये
दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला
भरि भरि हेमथार वर भामिनि। गावति चलीं सिन्धुरगामिनि
जो जैसे तैसेहि उठि धावहिं। बालवृद्ध कोउ संग न लावहिं
एक एकन्ह पूछहिं भाई। तुम देखे दयालु रघुराई
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल शोभा की खानी।
भइ सरयू अति निर्मल नीरा। बहै सुहावन त्रिविधि समीरा।

दोहा—हर्षित गुरु परिजन अनुज, भूसुर वृन्द समेत।
चले भरत अति प्रेम मन, सम्मुख कृपानिकेत॥
बहुतक चढ़ीं अटारिन, निरखहिं गगन विमान।
देखि मधुर स्वर हर्षित, करहि सुमंगल गान॥
राकाशशि रघुपति पुरी, सिन्धु देखि हर्षान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान॥

राम राज्य

[राम का प्रजा पालन में रत होना, एक समय भाइयों सहित राम का एक उपवन में जाना, वहाँ सनकादिकों का पहुँचना तथा राम का उनका सत्कार करना।]

दोहा—यहि विधि नगर नारि नर, करहि राम गुणगान।
सानुकूल सन्तत रहत, सब पर कृपानिधान॥

जबते राम प्रताप खगेशा। उदित भयो अति प्रबल दिनेशा॥
पूरि प्रकाश रह्यो तिहुँ लोका। बहुतन सुख बहुतन मन शोका॥
जिनहिं शोक तेहि कहौं बखानी। प्रथम अविद्या-निशा सिरानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम-क्रोध कैरव सकुचाने॥
विविध कर्म गुण काल स्वभाऊ। ये चकोर सुख लहैं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन कहँ सुख नहिं कौनिउ ओरा॥
धर्म तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ये पंकज विकसे विधि नाना॥
सुख सन्तोष विराग विवेका। विगत शोक ये कोक अनेका॥

दोहा—यह प्रताप रवि जासु उर, जब प्रभु करहिं प्रकाश।
पाछिल बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नाश॥

भ्रातन सहित राम इक बारा। संग परमप्रिय पवनकुमारा॥
सुन्दर उपवन देखन गयऊ। सब तरु कुसुमित पल्लव नयऊ॥
जानि समय सनकादिक आये। तेजपुञ्ज गुण शील सुहाये॥
ब्रह्मानन्द सदा लयलीना। देखत बालक बहु-कालीना॥
धरे देह जनु चारिउ वेदा। समदर्शी मुनि विगत विभेदा॥
आशा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसम्भव मुनिवर ज्ञानी॥
राम कथा मुनि बहु विधि बरनी। ज्ञान योनि पावक जिमि अरनी॥

दोहा—देखि राम मुनि आवत, हर्षि दण्डवत कीन्ह।
स्वागत पूँछी, पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥

कीन्ह दण्डवत तीनों भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई॥
मुनि-रघुपति छवि अतुल विलोकी। भये मगन मन सकत न रोकी॥
श्यामलगात सरोरुह-लोचन। सुन्दरता मन्दिर भव-मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरे शीश नवावहिं॥
तिन की दशा देखि रघुवीरा। स्रवत नयन जल पुलक शरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे। परम मनोहर वचन उचारे॥
आजु धन्य मैं सुनहु मुनीशा। तुम्हरे दरश जाहि अघ खीशा॥
बड़े भाग्य पाइय सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥

दोहा—सन्त पन्थ अपवर्ग कर, कामी भव-कर पन्थ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ॥

कलियुग की करामात

[प्रस्तुत अंश में प्रकारान्तर से गोस्वामी जी ने कलियुग की सामाजिक अवस्था का वर्णन किया है; किस प्रकार चारों ओर दम्भ, कपट, छल, झूठ, अत्याचार और पाप का बोलबाला है।]

दोहा—कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, लुप्त भये सदग्रन्थ।
दम्भिन निज-मति कल्पि करि, प्रकट किये बहु पन्थ॥
भये लोग सब मोह बश, लोभ ग्रसे शुभ कर्म।
सुनु हरियान सुज्ञान निधि, कहौं कछुक कलिधर्म॥

वर्ण धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुतिविरोधरत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन॥
मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई। ताकहँ सन्त कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी॥
जो बहु झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुणवन्त बखाना॥
निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी॥
जाके नख अरु जटा विशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

दोहा—अशुभ वेष भूषण धरे, भक्ष्याभक्ष्य जो खाहिं।
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं॥

सो०—जे अपकारी चार, तिनकर गौरव मान्यता।
मन क्रम बचन लबार, तेइ वक्ता कलिकाल महँ॥

नारि विवश नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
शूद्र द्विजनि उपदेशहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सब नर काम लोभरत क्रोधी। देव विप्र गुरु सन्त विरोधी॥
गुणमन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी॥
सौभागिनी विभूषण हीना। विधवन कर शृंगार नवीना॥
गुरु-शिष अंधबधिरकै लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा॥
हरै शिष्यधन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥
मातु पिता बालकन बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

दोहा—ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी कारण मोहवश, करहिं विप्र गुरु घात॥
बाद शूद्र कर द्विजन सन, हम तुमते कछु घाटि।
जाने ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहिं डाटि॥

पर तिय लम्पट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर । देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥
आपु गये अरु आनहि घालहि । जो कोउ श्रुति मारग प्रतिपालहि ॥
कल्प कल्प भरि इक इक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥
जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई गृह सम्पति नासी । मूड़ मुड़ाइ भये सन्यासी ॥
ते बिप्रन सन पाँव पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नशावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार शठ बृषलीस्वामी ॥
शूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरणि अनीति अपारा ॥

दोहा—भये वर्णसंकर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग ।
करहिं पाप दुख पावहिं, भय रुज शोक बियोग ॥
श्रुति सम्मति हरिभक्तिपथ, संयुत बिरति बिवेक ।
ते न चलहिं नर मोहवश, कल्पहिं पन्थ अनेक ॥

छन्द

बहु धाम सँवारहिं योगि यती, बिषया हरि लीन गई बिरती ।
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न जात कही ॥
कुलवन्ति निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पियारि लगी जब ते, रिपु रूप कुटुम्ब भये तब ते ।
नृप पापपरायण धर्म नहीं, करु दण्ड बिडम्ब प्रजा नितहीं ॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी, द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी ।
नहिं मान पुराणहि वेदहि जो, हरिसेवक सन्त सही कलि सो ॥
कबिवृन्द उदार दुनी न सुनी, गुणदूषक बात न कोपि गुनी ।
कलि बारहिबार दुकाल परै, बिन अन्न दुखी सब लोग मरै ॥
दोहा—सुनु खगेश कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाखण्ड ।
काम क्रोध लोभादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मण्ड ॥

दोहा—कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, लुप्त भये सदग्रन्थ।
दम्भिन-निज-मति कल्पि करि, प्रकट किये बहु पन्थ॥
भये लोग सब मोह बश, लोभ ग्रसे शुभ कर्म।
सुनु हरियान सुज्ञान निधि, कहौं कछुक कलिधर्म॥

वर्ण धर्म नहि आश्रम चारी। श्रुतिविरोधरत सब नर नारी
द्विज श्रुति बचक भूप प्रजाशन। कोउ नहि मान निगम अनुशासन
मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा
मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई। ताकहँ सन्त कहै सब कोई
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी
जो बहु झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुणवन्त बखाना।
निराचार जो भृदिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी।
जाके नख अरु जटा विशाला। सोइ ताग्स प्रसिद्ध कलिकाला।

दोहा—अशुभ वेष भूषण धरे, भक्ष्याभक्ष्य जो खाहि।
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहि॥

सो०—जे अपकारी चार, तिनकर गौरव मान्यता।
मन क्रम बचन लबार, तेइ वक्ता कलिकाल महँ॥

नारि बिवश नर सकल गोसाईं। नाचहि नट मर्कट की नाईं॥
शूद्र द्विजनि उपदेशहि ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहि कुदाना॥
सब नर काम लोभरत क्रोधी। देव विप्र गुरु सन्त विरोधी॥
गुणमन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहि नारि परपुरुष अभागी॥
सौभागिनी विभूषण हीना। विधवन कर शृंगार नवीना॥
गुरु-शिष्य अंधबधिरकै लेखा। एक न सुनै एक नहि देखा॥
हरै शिष्यधन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥
मातु पिता बालकन बोलावहि। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहि॥

दोहा—ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, कहहि न दूसरि बात।
कौड़ी कारण मोहबश, करहि विप्र गुरु घात॥
बाद शूद्र कर द्विजन सन, हम तुमते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहि डाटि॥

पर तिय लम्पट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर । देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥
आपु गये अरु आनहिं घालहिं । जो कोइ श्रुति मारग प्रतिपालहिं ॥
कल्प कल्प भरि इक इक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥
जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा । श्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई गृह सम्पति नासी । मूड़ मुड़ाइ भये सन्यासी ॥
ते विप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
विप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार शठ वृषली स्वामी ॥
शूद्र करहिं जप तप व्रत नाना । बैठि वरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरणि अनीति अपारा ॥

दोहा—भये वर्णसंकर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग ।
करहिं पाप दुःख पावहिं, भय रुज शोक वियोग ॥
श्रुति सम्मत हरिभक्तिपथ, संयुत विरति विवेक ।
ते न चलहिं नर मोहबश, कल्पहिं पन्थ अनेक ॥

छन्द

बहु धाम सँवारहिं योगि यती, विषया हरि लीन गई विरती ।
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न जात कही ॥
कुलवन्ति निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पियारि लगी जब ते, रिपु रूप कुटुम्ब भये तब ते ।
नृप पापपरायण धर्म नहीं, कर दण्ड विदण्ड प्रजा नितही ॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी, द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी ।
नहिं मान पुराणहि वेदहि जो, हरिसेवक सन्त सही कलि सो ॥
कविवृन्द उदार दुनी न सुनी, गुणदूषक व्रात न कोपि गुनी ।
कलि बारहिबार दुकाल परै, बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥
दोहा—सुनु खगेश कलि कपट-हठ, दम्भ द्वेष पाखण्ड ।
काम क्रोध लोभादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मण्ड ॥

दोहा—तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख व्रत दान ।
देव न बरसै धरनि पर, बये न जामहिं धान ॥

छन्द

अबला कच भूषण भूरि छुधा, धन हीन दुखी ममता बहुधा ।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता, मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥
नर-पीड़ित रोग न भोग कहीं, अभिमान विरोध अकारणहीं ।
लघु जीवन संवत पंच दशा, कल्पांत न नाश गुमान असा ॥
कलि काल बिहाल किये मनुजा, नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ।
नहिं तोष विचार न शीतलता, सब जाति कुजाति भये मँगता ॥
इरषा परुषा छल लोलुपता, भरि पूरि रही समता विगता ।
सब लोग वियोग विशोक हये, वर्णाश्रम धर्म अचार गये ॥
दम दान दया नहिं जानपनी, जड़ता परवंचनताति घनी ।
तनुपोषक नारि नरा सगरे, पर निन्दक जो जग में बगरे ॥

दोहा—सुनु व्यालारि कराल कलि मल अवगुण आगार ।
गुणौ बहुत कलिकाल कर, बिन प्रयास निस्तार ॥
कृत युग त्रेता द्वापरहु, पूजा मख अरु योग ।
जो गति होइ सो कलिहिं हरि, नाम ते पावहिं लोग ॥

कवितावली

[यह संकलन 'कवितावली' से किया गया है । इसमें कवित्तों तथा सवैयों में गोस्वामी जी ने राम चरित्र का वर्णन किया है । उत्तरार्द्ध में इन्होंने अपने वार्द्धक्यकाल पर भी प्रकाश डाला है । इस दृष्टि से यह रचना अमूल्य है, क्योंकि केवल इसी से गोस्वामी जी के प्रारम्भिक जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इससे पता लगता है कि गोस्वामी जी का बाल्यकाल बड़े कष्ट में व्यतीत हुआ था ।]

बालकाण्ड

अवधेसके द्वारें सकारें गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को, ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से ।
'तुलसी' मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन बालक से ।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह-से बिकसे ॥ १ ॥

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कंज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं ।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बालबिनोद करैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी' मन-मन्दिर मे बिहरैं ॥ २ ॥

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिएँ ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृप गोद लिएँ ।
अरबिंदु सो आनन रूप मरंद अनंदित लोचन भृंग पिएँ ।
मनमो न बस्यो अस बालक जौं, 'तुलसी' जग में फलु कौन जिएँ ॥ ३ ॥

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन-मन्दिर में बिहरैं ॥ ४ ॥

पदकंजनि मँजु बनीं पनहीं धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजू तट चौहट हाट हिएँ।
तुलसी अस बालक सौं नहि नेहु, कहा जप जोग समाधि किएँ।
नर वे खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फलु कौन जिएँ॥५॥

सियके स्वयंबर, समाज जहाँ राजनि को,
राजन के राजा महाराजा जाने नाम को।
पवनु, पुरंदरु कृसानु, भानु, धनदु से,
गुनके निधान रूपधाम सोमु कामु को।
बाल बलवान, जातुधानप सरीखे सूर,
जिन्हकें गुमान सदा सालिम संग्राम को।
तहाँ दसरत्थ के समत्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायौ चापु चन्द्रमाललामको॥६॥

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र-सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंधु मुक्ख भर।
सुर बिमान हिमभानु भानु संघटत परसपर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहि राम सिव धनु दल्यौ॥७॥

गर्भ के अर्भक काटनकों, पटुधार कुठारु कराल है जाको।
सोइ हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बलु ताको।
लघु आनन उत्तर देत बड़े, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरयो, कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको॥८॥

नगर निसान बर बाजैं ब्योम दुंदुभीं,
बिमान चढ़ि गान कैकै सुरनारि नाचहीं।
जयति जय तिहुँ पुर, जयमाल राम उर,
बरषैं सुमन सुर रूरे रूप राचहीं।
जनक को पनु जयो, सबको भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।

साँवरे किशोर गोरी सोभा पर तृन तोरी,
जोरी जियौ जुग-जुग जुवती-जन जाचहीं ॥ ६ ॥

अयोध्या काण्ड

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, बिभूषण उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों, पथ के साथी ज्यों लोग-लोगाई।
संग सुबन्धु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले, तजि बापको राज बटाऊ की नाईं ॥ १ ॥

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरें गिरिमेरु सिलाकन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े।
'तुलसी' जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ मागत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥ २ ॥

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटिलौं जलु थाह देखाइहौं जू।
परसें पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।
तुलसी अवलंबु न और कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोएँ हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥ ३ ॥

रावरे दोष न पायनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहनु काठ को कोमल है, जलु खाइ रहा है।
पावन पाय पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥ ४ ॥

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछू बेद न पढ़ाइहौं।
सबु परिवारु मेरो याही लागि, राजा जू
हौं दीन बित्तहीन कैसें दूसरी गढ़ाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभुसों निषादु ह्वै के बादु न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोएँ नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥ ५ ॥

पदकंजनि मंजु बनीं पनहीं धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजू तट चौहट हाट हिएँ।
तुलसी अस बालक सों नहि नेहु, कहा जप जोग समाधि किएँ।
नर वे खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फलु कौन जिएँ ॥ ५ ॥

सियके स्वयंबर, समाज जहाँ राजनि को,
राजन के राजा महाराजा जाने नाम को।
पवनु, पुरंदरु कृसानु, भानु, धनदु से,
गुनके निधान रूपधाम सोमु कामु को।
बाल बलवान, जातुधानप सरीखे सूर,
जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को।
तहाँ दसरत्थ के समत्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायौ चापु चन्द्रमाललामको ॥ ६ ॥

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र-सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर ॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंधु मुक्ख भर।
सुर बिमान हिमभानु भानु संघटत परसपर ॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिव धनु दल्यौ ॥ ७ ॥

गर्भ के अर्भक काटनकों, पटुधार कुठारु कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बलु ताको।
लघु आनन उत्तर देत बड़े, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भर्यो, कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको ॥ ८ ॥

नगर निसान बर बाजैं ब्योम दुंदुभीं,
बिमान चढ़ि गान कैके सुरनारि नाचहीं।
जयति जय तिहूँ पुर, जयमाल राम उर,
बरषैं सुमन सुर रूरे रूप राचहीं।
जनक को पनु जयो, सबको भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।

साँवरो किशोर गोरी सोभा पर तृन तोरी,
जोरी जियौ जुग-जुग जुवती-जन जानहीं ॥ ६ ॥

अयोध्या काण्ड

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, बिभूषण उप्पम अंगनि पाई ।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग-लोगाई ।
संग सुबन्धु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई ।
राजिवलोचन रामु चले, तजि बापको राज बटाऊ की नाई ॥ १ ॥

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदीं भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरें गिरिमेरु सिलाकन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ।
'तुलसी' जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े ।
सो प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ मागत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥ २ ॥

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटिलौं जलु थाह देखाइहौं जू ।
परसें पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ।
तुलसी अवलंबु न और कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोएँ हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥ ३ ॥

रावरे दोष न पायनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें बन-बाहनु काठ को कोमल है, जलु खाइ रहा है ।
पावन पाय पखारि के नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥ ४ ॥

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं ।
सबु परिवारु मेरो याही लागि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभुसों निषादु ह्वै के बाद न बढ़ाइहौं ।
तुलसी के ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोएँ नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥ ५ ॥

पुरतें निकसी रघुबीरबधू, धरि धीर दए मगमें डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥६॥

जलको गये लक्खनु हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाहको नेहु लख्यो, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥७॥

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि-पाहनहूँ ते कठोर हियो है।
राजहुँ काज अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहि कान कियो है।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, इन्हें किमि कै बनवासु दियो है॥८॥

सीस जटा, उर-बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरें, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मन मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ साँवरे से सखि! रावरे को हैं॥९॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाइ चली।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु-उदै बिगसी मनो मंजुल कंजकली॥१०॥

अरण्य काण्ड

पंचबटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं रामु सुभायँ सुहाए।
सोहै प्रिया प्रिय बंधु 'तुलसी' सब अंग घने छबि-छाए।
देखि मृगा मृगनैनी बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
लै रघुनायकु धाए॥१॥

किष्किंधा काण्ड

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिवेको पलु गो ।
साहसी ह्वै सैलपर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर औरनि को कलु गो ।
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिलु आयो,
कोलु कलमल्यो अहि-कमठ को बलु गो ।
चारिहूँ चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो ॥ १ ॥

सुन्दर काण्ड

बासवी बिसाल बिकराल ज्वालजाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है ।
'तुलसी' सुरेस-चापु, कैधौं दामिनी कलापु,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखें जातुधान जातुधानीं अकुलानी कहैं,
काननु उजार्‌यो, अब नगरु प्रजारिहै ॥ १ ॥
रावनु सो राजरोगु बाढ़त बिराट-उर,
दिनु दिनु बिकल सकल सुख राँक सो ।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि,
होत न बिसोक, औत पावै न मनाक सो ।
रामकी रजाइतें रसायनी समीरसूनु
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो ।
जातुधान-बुट पुटपाक लंक-जातरूप-
रतन जतन जारि कियो है मृगांक-सो ॥ २ ॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लाँघ, लखि
　　लंक सिद्धपीठु निसि जागो है मसानु सो।
'तुलसी' बिलोकि महासाहसु प्रसन्न भई,
　　देवी सीय-सारिखी, दियो है बरदानु सो।
बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
　　भानु-कुल भानु को प्रतापभानु-भानु-सो।
करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक कपि,
　　कहै जामवंतु, आयो, आयो हनुमान सो॥ ३॥
बासव बरुन बिधि बनतें सुहावनो,
　　दसाननको काननु बसन्त को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बातु,
　　पालत लालत रति मारको बिहारु सो।
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाउ
　　रागबस भो बिरागी पवनकुमारु सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर
　　'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक-सोक सारु सो॥ ४॥
बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर
　　खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीलो गात कै-कै,
　　लातकै अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं'॥
बाल किलकारी कै-कै तारी दै दै गारी देत,
　　पाछें लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्ही आगी,
　　बिंधिकी दवारि कैधौं कोटिसत सूर हैं॥ ५॥
जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
　　जरत निकेतु धावौ धावौ लागी आगि रे।
कहाँ तातु मातु भ्रात भगिनी, भामिनी भाभी
　　ढोटा छोटे छोहरा, अभागे भोंड़े भागि रे।

हाथी छोरौ, घोरा छोरौ, महिष-बृषभ छोरौ,
छेरी छोरौ, सोवै सो, जगावौ, जागि, जागि रे।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
बार-बार कह्यौं, पिय कपि सों न लागि रे॥ ६॥

हाट-बाट-कोट-ओट, अटनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चले भागि है॥
बालधी फिरावै, बार बार झहरावै, झरैं,
बूँदिया सी लंक पघिलाइ पाग पागि है।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागि है॥ ७॥

पान-पकवान बिधि नाना के, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनककिरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ,
काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं।
प्रबल अनल बाढ़ै जहाँ काढ़ै, तहाँ डाढ़ै,
झपट-लपट भरे भवन भँडारहीं।
'तुलसी' अगारु न पगारु न बजारु बच्यो,
हाथी हथसार जरे घोरे घोरसारहीं॥ ८॥

कोपि दसकन्ध तब प्रलय-पयोद बोले,
रावन-रजाइ धाइ आये जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति लंक बरत, बुताओ बेगि,
बानरु बहाइ मारौ महाबारि बोरि कै।
'भलें नाथ!' नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
बरषैं मुसलधार बार-बार घोरि कै।
जीवनतें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥ ९॥

लङ्का काण्ड

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ विरोध न कीजिये बौरे।
बालि बली, खर-दूषनु और अनेक गिरे जे-जे भीतिमें दौरे॥
ऐसिअ हाल भई तोहियौं न तु लै मिलु सीय चहै सुखु औरे।
राम के रोष न राखि सकें तुलसी विधि, श्रीपति, संकर सौ रे॥ १॥

हाथिन सों हाथी मारे घोरे सों सँघारे घोरे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट, चोट चरन, चकोट चाहैं,
हहरानीं फौजैं भहरानी जातुधान की।
बार-बार सेवक-सराहना करत रामु,
'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत, लपेटि पटकत भट,
देखौ, देखौ, लखन! लरनि हनुमान की॥ २॥

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में, एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे, कर-चरन उखारे एक,
चीरि-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं।
'तुलसी' लखत, रामु, रावन, बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े-बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान-जूथप निपाते बातजात हैं॥ ३॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाए जातुधान, हनुमान लियो घेरि कै।
महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि, भट,
जहाँ-तहाँ पटके लँगूर फेरि-फेरि कै।
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हा हा खात,
कहैं 'तुलसीस! राखि' रामकी सौं टेरि कै।

ठहर-ठहर परे, कहरि-कहरि उठैं,
हहरि-हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥ ४ ॥

कतहुँ बिटप-भूधर उपारि पर सेन बरष्षत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि, गजराज करष्षत।
चरनचोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत।
बिकट कटकु बिद्दरत बीरु बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम, जय !' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥ ५ ॥

सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरैं बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं।
'तुलसी' जिन्ह धाएँ धुकै धरनी, धरनीधर धौर धकान हले हैं।
ते रन तीक्खन लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं ॥ ६ ॥

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड के कमंडल, खपर किएँ कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनीं तापसी-सी,
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै।
सोनितसों सानि-सानि गूदा खात सतुआ-से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।
'तुलसी' बैताल-भूत साथ लिएँ भूतनाथु,
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै ॥ ७ ॥

कानन बासु दसाननु सो रिपु,
आननश्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलसालि दल्यो,
कपि सालि बिभीषनु भूपु कियो है।
तीय हरी, रन बंधु पर्यो,
पै भर्यो, सरनागत सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु,
कहाँ रघुबीर सो बीरु बियो है ॥ ८ ॥

उत्तर काण्ड

बालि-सो बीरु बिदारि सुकंठु थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे।
राम सुभाउ सुनें 'तुलसी' हुलसै अलसी हम-से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद, तेउ गरीबनेवाज नेवाजे॥ १॥
तीय सिरोमनि सीय तजी, जेंहि पावक की कलुषाई दही है।
धर्म-धुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है।
कीस-निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही, अनैसी सुभायँ सही है॥ २॥
जाके बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि।
ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकी-जीवन को जनु ह्वै जरिजाउ सो जीह जो जाचत औरहि॥ ३॥
बिषया परनारि निसा तरुनाई, सो पाय पर्‌यो अनुरागहिं रे।
जमके पहरू दुख, रोग बियोग बिलोकत हू न बिरागहि रे।
ममता बस तें सब भूलि गयो भयो भोरु, महा भय, भागहि रे।
जरठाइ-दिसा रबि-कालु उग्यो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥ ४॥
भलि भारत भूमि, भलें कुल जन्मु समाजु सरीरु भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा, बरषा, हिम, मारुत, घाम सदा सहि कै।
जो भजै भगवान सयान सोई, 'तुलसी' हठ चातकु ज्यों गहि कै।
न तु और सबै बिषबीज बए, हर हाटक कामदुहा नहि कै॥ ५॥
'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जगु,' संत कहंत जे अंतु लहा है।
ताको सहै सठ ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।
जानपनी को गुमानु बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी जीवनु जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥ ६॥
कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से, सोम-से सील, गनेसु से माने।
हरिचन्दु-से साँचे, बड़े बिधि से मघवा-से महीप बिषै-सुख-साने।

सुक से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भये तो कहा 'तुलसी', जो पै राजिवलोचन रामु न जाने॥ ७॥
कुस गात ललात जो रोटिन को, घरवात घरें खुरपा खरिया।
तिन्ह सोने के मेरु-से ढेर लहे, मनु तौ न भरो घरु पै भरिया।
'तुलसी' दुखु दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुखु दारिद को करिया।
तजि आस भो दास रघुपति को, दसरत्थ को दानि दया-दरिया॥ ८॥
लोग कहैं, अरु हौंहु कहौं जनु खोटो-खरो रघुनायक ही को।
रावरी राम! बड़ी लघुता, जसु मेरो भयो सुखदायक ही को।
कै यह हानि सहौ, बलि जाउँ, कि मोहू करो निज लायक ही को।
आनि हिएँ हित जानि करौ, ज्यों हौं ध्यानु धरौं धनु-सायक ही को॥ ९॥
आपु हौं आपु को नीकें कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसी, सो कहै जगु जानकीनाथ पढ़ायो।
सोई है खेदु, जो बेदु कहै, न घटै जनु जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तौ सदा खर को असवार, तिहारोइ नामु गयंद चढ़ायो॥ १०॥

रावरो कहावौं, गुनु गावौं राम! रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम! रावरी ही कानि हौं।
जानत जहानु, मन मेरे हूँ गुमानु बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानि हौं।
पाँच की प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई,
तुम्ह अपनायो हौं तबै हौं परि जानि हौं।
गढ़ि-गढ़ि छोल-छाल कुन्दकी-सी भाईं बातें,
जैसी मुख कहौं, तैसी जीय जब आनि हौं॥ ११॥

ऊँचो मनु, ऊँची रुचि, भागु नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लङ्गर लबारु है।
स्वारथु अगमु, परमारथ की कहा चली,
पेटकी कठिन जग जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी, न खेती, न बनिज-भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु

तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम, न तु
मेंट पितरन को न मूड़हू में बार है ॥ १२ ॥
जायो कुल मगन, बधावनो बजायो, सुनि
भयो परितापु पापु जननी-जनक को।
बारे तें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
तुलसी सो साहेब समर्थ को सुसेवकु है
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नामु, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरीतें गरु तृनतें तनक को ॥ १३ ॥
बरन-धरमु गयो, आश्रम निवासु तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो-सो है।
करमु उपासना कुबासना बिनास्यो ग्यानु,
बचन-बिराग बेष जगत हरो-सो है।
गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,
निगम-नियोग तें सो केलि ही छरो-सो है।
कायँ मन बचन सुभायँ तुलसी है जाहि,
राम को भरोसो, ताहि नाम को भरोसो है ॥ १४ ॥
बेद पुरान बिहाइ सुपंथु, कुमारग, कोटि कुचालि चली है।
कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु बड़ोई छली है।
बर्न बिभाग न आश्रम-धर्म दुनी दुख-दोष-दरिद्र दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रतापु बली है ॥ १५ ॥
राजमराल के बालक पेलि कै, पालत-लालत खूसर को।
सुचि सुन्दर सालि सकेलि, सुवारि कै, बीजु बटोरत ऊसर को।
गुन-ग्यान गुमान भँभेरि बड़ी, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचारु अचारु हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को ॥ १६ ॥
आगम, बेद, पुरान बखानत मारग कोटिन, जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईसु कहावत सिद्ध सयाने।

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप, जोग, बिरागु लै जीव पराने।
को करि सोच मरै 'तुलसी', हम जानकी नाथ के हाथ बिकाने ॥ १७ ॥

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एकु न दैबे को दोऊ ॥१८॥

मेरें जाति-पाँति, न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
लोकु परलोकु रघुनाथही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी कें एक नाम को।
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोतु गोतु होत है गुलाम को'।
साधु कै असाधु कै, भलो कै पोच, सोचु कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को ॥ १९ ॥

कनककुधरु केदारु, बीजु सुन्दर सुरमनि बर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर॥
तीरथपति अंकुरसरूप, जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा-सुपत्र मञ्जरिय लच्छि जेहि॥
कैवल्य सकल फल, कलपतरु सुभ सुभाउ सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास, रघुबसमनि! तौ कि होइ तुअ कर सरिस ॥ २० ॥

ये नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
हि जानो बियोगु-सो रोगु है आगे, झुकी तब हौं तेहि सों तरजी।
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा-दरजी।
ब्रजराजकुमार बिना सुनु भृङ्ग! अनगु भयो जियको गरजी ॥ २१ ॥

जोग कथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधौ जू! क्यों न कहै कुबरी, जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।

जाहि लगी परि जानै सोई, तुलसी सो सुहागिनि नन्दलला की।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की ॥ २२ ॥

पठयो है छपदु छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ,
खोजि कै खवासु खासो कूबरी-सी बाल को।
ग्यान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार-
खाल को कढ़ैया, सो बढ़ैया उर-साल को।
प्रीति को बधिक, रस-रीति को अधिक, नीति-
निपुन, बिवेक है, निदेसु देस-काल को।
तुलसी कहें न बनै, सहें ही बनैगी सब,
जोगु भयो जोग को, बियोग नंदलाल को ॥ २३ ॥

देवन ही कहें जो जन जान पियै मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले, झगरें सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा को साजु बिरंचि रचैं तुलसी जे महातम जाननिहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग! तरंग तिहारे ॥ २४ ॥

ब्रह्म जो व्यापकु वेद कहें, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान गुनी को।
जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु, साहेबु दीन-दुनी को।
सोइ भयो द्रव रूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीत सदा तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुनी को ॥ २५ ॥

बारि तिहारो निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़े दोष दहौंगो।
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि, लगै सो कहौंगो ॥ २६ ॥

नाँगो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू', जनि माँगिए थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो।
नाक सवारन आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्मा कहै गिरजा! सिखवो, पति रावरो, दानि है बावरो भोरो ॥ २७ ॥

एक तौ कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें
कोढ़ में की खाजुसी सनीचरी है मीन की।
बेद-धर्म दूरि गए, भूमि-चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की।
दूसरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम!
रावरीयै गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज! आजु जौं न देत दादि दीन की॥ २८॥

गीतावलि

बालकाण्ड

[इन पदों का संकलन 'गीतावली' के बालकाण्ड से किया गया है। इस ग्रन्थ में गोस्वामीजी ने 'रामचरित' का वर्णन सूर के समान गेय पदों में किया है कई प्रसङ्ग गोस्वामीजी की भावुकता के कारण अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं भगवान राम की बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है। वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक भी दर्शनीय है। इन पदों में राम-जन्म से विवाह तक का वर्णन है।]

(१)

घर घर अवध बधावने मंगल-साज-समाज।
सगुन सोहावने मुदितमन कर सब निज-निज काज॥
निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह चारु चौकैं बिबिध धनी।
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपावलि बनी।
सुख-सुकृत-सोभामय पुरी बिधि सुमति-जननी जनु जनी॥ १॥

चैत चतुरदसि चाँदनी अमल उदित निसि राज।
उड़ुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनन्द आज॥
आनन्द उमगत आजु, बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै।
गावत, बजावत, नटत, हरषत, सुमन बरषत आइकै।
नर निरखि नभ, सुर पेखि पुर-छबि परसपर सचुपाइकै।
रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइकै॥ २॥

जागिय राम छठी सजनि रजनी रुचिर निहारि।
मंगल मोदमढ़ी मुरति नृप के बालक चारि॥

मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरचि परमारथमई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन जोग बिधि संकर दई।
तिन्हकी छठी मञ्जुल मठी जग सरस जिन्हकी सरसई।
किए नींद भामिनि जागरन अभिरामिनी जामिनि भई ॥ ३ ॥

सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिवर सिखये लौकिकौ बैदिक बिविध बिधान॥

बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत मुनि जानिकै।
बलिदान-पूजा मूलिकामनि साधि राखी आनिकै।
जे देव-देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै।
ते जन्त्र मन्त्र सिखाइ राखत सबनिसों पहिचानिकै ॥ ४ ॥

सकल सुआसिनि, गुरजन, पुरजन पाहुन लोग।
बिबुध-बिलासिनि सुर-मुनि, जाचक, जो जेहि जोग॥

जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये।
जय कहत, देत असीस, तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये।
ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख जीवन जिये ॥ ५ ॥

भूपति-भाग बली सु-स्वर नाग सराहि सिहाहिं।
तिय बर बेष अली रमा सिधि अनिमादिक माहिं॥

अनिमाद, सारद, सैलनन्दिनि बाल ललहि पालहीं।
भरि जनम जे पाए न, ते परितोष उमा, रमा लहीं।
निजलोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालहीं।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग, जनु प्रभु छठी छाया लही ॥ ६ ॥

(२)

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम-पुलकि, उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥

सुन्दर तनु सिसु-बसन बिभूषन नख सिख निरखि निकैया।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि-करि लैहैं मातु बलैया ॥ २ ॥

किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भजि मिलनि मनोहरतैया।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥ ३ ॥

बाल बिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया।
भूपति पुन्यपयोधि उमँग, घर-घर आनंद बधैया ॥ ४ ॥

ह्वैहैं सकल सुकृत-सुख-भाजन, लोचन लाहु लुटैया।
अनायास पाइहैं जनम-फल तोतरे बचन सुनैया ॥ ५ ॥

भरत, राम रिपुदमन, लखन के चरित-सरित अन्हवैया।
तुलसी तबके-से अजहूँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया ॥ ६ ॥

(३)

आजु अनैसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावतहू,
रोवत राम मेरो सो सोच सबही के ॥ १ ॥

देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिये घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखि ऐसेहि,
अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के ॥ २ ॥

बेगि बोलि कुलगुरु छुयो माथे हाथ अमी के।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह,
मन्त्र पढ़े, जो सुमिरत भय भी के ॥ ३ ॥

जासु नाम सरबस सदासिव पारबती के।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति
प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के ॥ ४ ॥

(४)

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥ १ ॥

बाल-बिनोद-मंजुल-मनि किलकनि मुकुता खानि खुलावौं।
तेहि अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति-मृगनयनि बुलावौं॥ २॥

तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं॥ ३॥

(५)

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए।
नील जलद तनु स्याम रामसिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए॥ १॥
बंधुक सुमन अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर जनु मुनिवर-कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए॥ २॥
कटि मेखल, बर हार ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए।
उर श्रीवत्स मनोहर हरि नख हेममध्य मनिगन बहु लाए॥ ३॥
सुभग चिबुक, द्विज, अधर, नासिका, स्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन, लोचन मनहु जुगल जलजाए॥ ४॥
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल-दसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए॥ ५॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाउ मनो तड़ित छपाए॥ ६॥
अंग-अंग पर मार निकर मिलि छबि समूह लै-लै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जो बिधि होहिं बनाए॥ ७॥

(६)

रघुबर बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज सोभा हरनि॥ १॥
बसी मानहु चरन-कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुन करनि॥ २॥

मंजु मेचक मृदुल तनु ! अनुहरति भूषन भरनि ।
जनु सुभग, सिंगार सिसु तरु फर्यो है अद्भुत फरनि ॥ ३ ॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि ।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ उपमा अपर दुरि डरनि ॥ ४ ॥

लसत कर-प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटुरुवन चरनि ।
जनु जलज-संपुट सुछवि भरि-भरि धरति उर धरनि ॥ ५ ॥

पुन्यफल अनुभवति सुतहिं बिलोकि दसरथ-घरनि ।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु-किलकनि ललित लरखरनि ॥ ६ ॥

(७)

छँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चार्‌यो भाई ।
सानुज भरत लाल लखन राम लोने लोने
लरिका लखि मुदित मातु-समुदाई ॥ १ ॥

बाल बसन भूषन धरे, नख-सिख छवि छाई ।
नील पीत मनसिज-सरसिज मंजुल-
मालनि मानो है देहनिते दुति पाई ॥ २ ॥

ठुमुक-ठुमुक पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई ।
भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि किलकनि,
अवलोकनि, बोलनि, बरनि न जाई ॥ ३ ॥

जननि सकल चहुँ ओर आल बाल मनि अँगनाई ।
दसरथ-सुकृत बिबुध-बिरवा बिलसत
बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई ॥ ४ ॥

हरि बिरचि हर हेरि राम प्रेम-परबसताई ।
सुख समाज रघुराज के बरनत
बिसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई ॥ ५ ॥

सुमिरत श्री रघुबरन की लीला लरिकाई ।
तुलसिदास अनुराग अवध आनँद
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई ॥ ६ ॥

(८)

आँगन खेलत आनँदकंद । रघुकुल कुमुद-सुखद चारु चन्द ॥ १ ॥
सानुज भरत लखन सँग सोहैं । सिसु भूषन भूषित मन मोहैं ।
तन दुति मोरचन्द जिमि झलकैं । मनहुँ उमँगि अँगअँग छवि छलकैं ॥२॥
कटि किंकिनि पग पैंजनि बाजैं । पङ्कज पानि पहुँचियाँ राजैं ।
कठुला कंठ बघनहा नीके । नयन-सरोज मयन सरसी के ॥ ३ ॥
लटकन लसत ललाट लटूरी । दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरी ।
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुन्दा । ललित बदन, बलि, बालमुकुन्दा ॥४॥
कुलही चित्र बिचित्र झँगूली । निरखत मातु मुदित मन फूली ।
गहि मनि खम्भ डिंभ डगि डोलन । कल बल बचन तोतरे बोलत ॥ ५ ॥
किलकत, झुकि झाँकत प्रतिबिम्बनि । देत परम सुख पितु अरु अंबनि ।
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है । गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥ ६ ॥

(९)

ललित सुतहिं लालति सचुपाये ।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये ॥ १ ॥
कटि किंकिनी, पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुन मधुर रेंगाये ।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरि नख मनिजटित जराये ॥ २ ॥
पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाये ।
दँतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुखछवि, अरुन अधर चित लेत चोराये ॥ ३ ॥
चिबुक कपोल, नासिका सुन्दर, भाल तिलक मसि-बिंदु बनाये ।
राजत नयन मंजु अंजनजुत खंजन कंज मीन मद नाये ॥ ४ ॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी-मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाये ।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाये ॥ ५ ॥
गिरी घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाये ।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनन्द न अमाये ॥ ६ ॥
देखत नभ-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराये ।
तुलसीदास जे रसिक न यहि रस ते नर जड़ जीवत जग जाये ॥ ७ ॥

(१०)

भोर भयो जागहु, रघुनन्दन ! गत व्यलीक भगतनि उर-चन्दन ॥ १ ॥
ससि कर हीन छीनदुति तारे । तम-चुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ॥ २ ॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने । लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥ ३ ॥
अनुज सखा सब बोलनि आये । बन्दिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥ ४ ॥
मन भावतो कलेऊ कीजै । तुलसिदास कहँ जूठनि दीजै ॥ ५ ॥

(११)

जागिये कृपानिधान जानिराय रामचन्द्र,
जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे ।
राजिवलोचन बिसाल, प्रीति बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥ १ ॥

अरुन उदित, बिगत सरबरी, ससांक किरनहीन,
दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह-तारे ।
मनहुँ ग्यानघन-प्रकास, बीते सब भव बिलास,
आस त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥ २ ॥

बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीति सुनहु,
स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे ।
मनहुँ बेदबन्दी-मुनिबृन्द-सूत मागधादि,
बिरद बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥ ३ ॥

बिकसित कमलावली, चले प्रपुञ्ज चञ्चरीक,
गुञ्जत कल कोमल धुनि त्यागि कञ्ज न्यारे ।
जनु बिराग पाइ सकल सोक-कूप-गृह बिहाइ,
भृत्य प्रेम-मत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥ ४ ॥

सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख कदंब दारे ।
तुलसिदास अति अनंद, देखिकै मुखारबिन्द
छूटे भ्रमफंद परम मन्द द्वन्द्व भारे ॥ ५ ॥

(१२)

खेलन चलिये आनँद कन्द।
सखा प्रिय नृप द्वार ठाढ़े बिपुल बालक-बृन्द॥ १॥
तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक-दास।
बपुष बारिद बरषि छबि-जल हरहु लोचन-प्यास॥ २॥
बंधु-बचन बिनीत सुनि उठे मनहु केहरि बाल।
ललित लघु सर चाप कर, उर नयन बाहु बिसाल॥ ३॥
चलत पद प्रतिबिंब राजत अजिर सुषमा-पुंज।
प्रेमबस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज॥ ४॥
निरखि परम बिचित्र सोभा चकित चितवहिं मात।
हरष-बिबस न जात कहि, 'निज भवन बिहरहु तात'॥ ५॥
देखि तुलसीदास प्रभु-छबि रहे सब पल रोकि।
थके निमिष चकोर मानहुँ सरद-इंदु बिलोकि॥ ६॥

(१३)

बिहरत अवध बीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु, नव नील नीरद-स्याम॥ १॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान।
पीत पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु-बान॥ २॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि॥ ३॥

(१४)

[illegible] ललित लघु-लघु धनु-सर कर,
तैसी तरकसी कटि कसे पट पियरे।
[illegible] ललदी पाँव पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहै मनु, रहे नित नियरे॥ १॥

पहुँचो अगद चारु, हृदय पदिक हारु,
कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कवि जियरे।
सिरनि टिपारो लाल नीरज नयन बिसाल,
सुन्दर बदन ठाढ़ सुरतरु सियरे॥ २॥
सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर नारि रहें ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चकडोरि,
मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे॥ ३॥

(१५)

चहत महामुनि जाग-जयो।
नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तयो॥ १॥
सापे पाप, नये निदरत खल, तब यह मंत्र ठयो।
बिप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि हित हरि अवतार लयो॥ २॥
सुमिरत श्री सारंगपानि छन में सब सोच गयो॥
चले मुदित कौसिक कोसलपुर सगुननि साथ दयो॥ ३॥
करत मनोरथ जात पुलकि, प्रगटत आनद नयो।
तुलसी प्रभु अनुराग उमगि मग मंगल मूल भयो॥ ४॥

(१६)

देखि मुनि! रावरे पद आज।
भयो प्रथम गनती में अबतें हौं जहँ लौं साधु समाज॥ १॥
चरन बंदि, कर जोरि निहोरत, "कहिय कृपा करि काज।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह-गेह सब राज"॥ २॥
भली कही भूपति त्रिभुवन में, को सुकृती-सिरताज?
तुलसी राम-जनमहितें जनियत सकल सुकृत को साज॥ ३॥

(१७)

दोउ राजसुवन राजत मुनि के संग।
लोने, लोने बदन, लोने लोयन, दामिनि बारिद-बरबरन अंग॥ १॥

सिर सिखा सुहाय, उपवीत पीतपट, धनु-सर कर, कसे कटि निषंग ।
मानो मख-रक्षक निसिचर हरिबे को सुत पावक के माग पठये पतंग ॥ २ ॥
करत छाँह घन, बरषै सुमन सुर, छबि बरनत अतुलित अनंग ।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खगमृग प्रेम मगन रँग रूप रँग ॥ ३ ॥

(१८)

मुनि के संग बिराजत बीर
काकपच्छधर, कर कोदंड सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥ १ ॥
बदन इंदु अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकित रिषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम की भीर ॥ २ ॥
खेलत, चलत, करत मग कौतुक, बिलँबत सरित सरोवर तीर ।
तोरत लता, सुमन सरसीरुह, पियत सुधा-सम सीतल नीर ॥ ३ ॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनितर, पुनि-पुनि बरनत छाँह-समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत मधुप, मराल, कोकिला कीर ॥ ४ ॥
नयननि को फल लेत निरखि खग, मृग, सुरभी ब्रज बधू अहीर ।
तुलसी प्रभुहिं देत सब आसन निज-निज मन मृदु कमल कुटीर ॥ ५ ॥

(१९)

राम पद-पदुम-पराग परी ।
रिषि तिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी ॥ १ ॥
प्रबल पाप पति-साप-दुसह दव दारुन जरनि जरी ।
कृपा सुधा सिंचि बिबुध-बेलि ज्यों फिरि सुख फरनि फरी ॥ २ ॥
निगम अगम मूरति महेस मति जुबति बराय बरी ।
सोइ मूरति भइ जानि नयन पथ इक टकतें न टरी ॥
बरनति हृदय स्वरूप, सील, गुन प्रेम-प्रमोद-भरी
तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न

(२०)

आये मुनि कौसिक जनक हरषाने हैं
बोलि गुर भूसुर समाज सों मिलन चले,
भाग अनुराग

नाइ सीस पगनि, असीस पाइ प्रमुदित,
पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं।
असन, बसन, बासकै सुपास सब विधि,
पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं॥ २ ॥
विनय बड़ाई ऋषि-राजऊ परसपर,
करत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं।
देखे राम लखन निमेषै बिथकित भई,
मानहु ते प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं॥ ३ ॥
ब्रह्मानंद हृदय दरस-सुख लोयननि,
अनुभये उभय, सरस राम जाने हैं।
तुलसी बिदेह की सनेह की दसा सुमिरि,
मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं॥ ४ ॥

(२१)

ये अवधेस के सुत दोऊ।
चढ़ि मंदिरनि बिलोकत सादर जनक नगर सब कोऊ॥ १ ॥
स्याम गौर सुन्दर किसोर तनु, तून-बान-धनुधारी।
कटि पट पीत, कंठ मुकुतामनि, भुज बिसाल, बल भारी॥ २ ॥
मुख मयंक, सरसीरुह लोचन, तिलक भाल टेढ़ी भौंहैं।
कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त गज-गौंहैं॥ ३ ॥
बिस्वामित्र हेतु पठये नृप, इनहिं ताड़का मारी।
मख राख्यो रिपु जीति, जान जग, मग मुनि-बधू उधारी॥ ४ ॥
प्रिय पाहुने जानि नरनारिन नयननि अयन दये।
तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान भये॥ ५ ॥

(२२)

रंग-भूमि भोरे ही जाइकै।
राम लषन लखि लोग लूटि हैं लोचन लाभ अघाइकै॥ १ ॥
भूप भवन, घर घर, पुर बाहर, इहै चरचा रही छाइकै।
मगन मनोरथ-मोद नारि नर, प्रेम-बिबस उठैं गाइकै॥ २ ॥

सोचत बिधि-गति समुझि, परसपर कहत बचन बिलखाइ कै।
कुँवर किसोर, कठोर सरासन, असमंजस भयो आइ कै॥ ३ ॥
सुकृत सँभारि, मनाइ पितर सुर, सीस ईसपद नाइ कै।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइ कै॥ ४ ॥
लेत फिरत कनसुईं सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाइ कै।
सुनि अनुकूल, मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइ कै॥ ५ ॥
कौसिक-कथा एक एकनिसों कहत प्रभाउ जनाइ कै।
सीय राम-संजोग जानियत, रच्यो बिरंचि बनाइ कै॥ ६ ॥
एक सराहि सुबाहु-मथन बर बाहु, उछाह बढ़ाइ कै।
सानुज राज-समाज बिराजे हैं राम पिनाक चढ़ाइ कै॥ ७ ॥
बड़ी सभा बड़ो लाभ, बड़ो जस, बड़ी बड़ाई पाइ कै।
को सोहि है, और को लायक रघुनायकहिं बिहाय कै? ॥ ८ ॥
गवनिहैं गँवहि गवाँइ गरब गृह नृप कुल बलहि लजाइ कै।
भली भाँति साहब तुलसी के चलिहैं ब्याहि बजाइ कै॥ ९ ॥

(२३)

राम लषन जब दृष्टि परे, री।
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री॥ १ ॥
धनुष जग्य कमनीय अवनितल कौतुकही भए आय खरे, री।
छबि सुर सभा मनहु मनसिज के कलित कलपतरु रूख फरे, री॥ २ ॥
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत चित हित हरष भरे, री।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भलें पैत पासे सुढर ढरे, री॥ ३ ॥

(२४)

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सुबिरंचि श्रम कियो है कितौ, री॥ १ ॥
नख-सिख सुन्दरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर रूपसुधा भरिबे कहँ, नयन-कमल कल कलस रितौ, री॥ २ ॥
मेरे जान इन्हें बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री।
तुलसी प्रभु भंजिहैं सम्भु-धनु, भूरिभाग, सिय-मातु पितौ, री॥ ३ ॥

(२५)

सबहिं सब नृपति निरास भए ।
गुरुपद-कमल बन्दि रघुपति तब चाप-समीप गए ॥ १ ॥
स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु, उर-भुज-नयन-बिसाल ।
पीत बसन कटि, कलित कंठ सुन्दर सिन्धुर मनिमाल ॥ २ ॥
कल कुण्डल, पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल ।
कोटि-मदन-छबि सदन, बदन-बिधु, तिलक मनोहर भाल ॥ ३ ॥
रूप अनूप बिलोकत सादर पुरजन राज समाज ।
लखन कह्यो थिर होहु धरनि-धरु, धरनि, धरनि-धर आज ॥ ४ ॥
कमठ, कोल, दिग-दन्ति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज ।
चहत चपरि सिव-चाप चढ़ावन दसरथ को जुवराज ॥ ५ ॥
गहि कर तल, पुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो ।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो ॥ ६ ॥
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक हियो ।
भज्यो भृगुपति-गरब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥ ७ ॥
भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान ।
चौंके सिव बिरंचि, दिसि-नायक, रहे मूँदि कर कान ॥ ८ ॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान ।
उमगि चल्यो आनँद नगर, नभ जय धुनि मंगल गान ॥ ९ ॥
बिप्र बचन सुनि सखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याइ ।
कुँवर निरखि, जयमाल मेलि उर कुँवरि रही सकुचाइ ॥१०॥
बरषहिं सुमन असीसहिं सुर-मुनि, प्रेम न हृदय समाइ ।
सीय-राम की सुन्दरता पर तुलसिदास बलि जाइ ॥११॥

(२६)

राम काम-रिपु-चाप चढ़ायो ।
मुनिहि पुलक, आनन्द नगर, नभ निरखि निसान बजायो ॥ १ ॥
जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप सबहिं बिषाद बढ़ायो ।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो, जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥ २ ॥

पहिराई जयमाल जानकी, युवतिन्ह मंगल गायो ।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर, सुजस तिहूँ पुर छायो ॥ ३ ॥

(२७)

राजति राम-जानकी-जोरी ।
स्याम सरोज जलद सुन्दर बर, दुलहिनि, तड़ित बरन तनु गोरी ॥ १ ॥
ब्याह समय सोहति बितानतर, उपमा कहु न लहति मति मोरी ।
मनहु मदन मंजुल मंडप महँ, छबि-सिंगार-सोभा इकठौरी ॥ २ ॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी ।
कनक कलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥ ३ ॥
इत बसिष्ठ मुनि, उतहि सतानँद, बंस बखान करै दोउ ओरी ।
इत अवधेस, उतहि मिथिलापति, भरत अंक सुखसिंधु हिलोरी ॥ ४ ॥
मुदित जनक रनिवास रहस बस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी ।
गान-निसान-बेदधुनि सुनि सुर बरषत सुमन, हरष कहै को री ? ॥ ५ ॥
नयनको फल पाइ प्रेम बस सकल असीसत ईस निहोरी ।
तुलसी जेहि आनँद मगन मन, क्यों रसना बरनै सुख सो री ! ॥ ६ ॥

(२८)

दूलह राम, सीय दुलही री ।
घन-दामिनि बर-बरन, हरन मन सुन्दरता नखसिख निबही, री ॥ १ ॥
ब्याह बिभूषन बसन बिभूषित, सखि अवली लखि ठगिसी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥ २ ॥
सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय मथि कियो है दही, री ।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही, री ॥ ३ ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख-सोभा अतुल, न जाति कही, री ।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥ ४ ॥

(२९)

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी ।
क्यों तोर्यो कोमल कर-कमलनि सम्भु-सरासन भारी ! ॥ १ ॥

क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी ?।
मुनि प्रसाद मेरे राम लषन की विधि बड़ि करवर टारी ॥ २ ॥
चरनरेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनि-बधू उधारी ।
कहौ धौं तात क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेह कुमारी ॥ ३ ॥
दुसह-रोष मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर-खयकारी ।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी ॥ ४ ॥
उमगि उमगि आनद बिलोकति बधुन सहित सुत चारी ।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी ॥ ५ ॥

अयोध्याकाण्ड

[ये पद गीतावली के अयोध्याकाण्ड से उद्धृत हैं। कैकेई के षड्य के फलस्वरूप राम वन जाने को तत्पर होते हैं, सीता तथा लक्ष्मण भी हठ कर उनका अनुगमन करते हैं। मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों के लोग इन पथि के अनिन्द्य सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाते हैं, अपने हृदय में वे नाना प्रक की कल्पनाएँ करते है। राम चित्रकूट पर निवास करते हैं। इधर भरत कैके की भर्त्सना करते हैं तथा राम से मिलने चित्रकूट आते हैं।]

(१)

सुनहु राम मेरे प्रान पियारे ।
बारौं सत्यबचन स्रुति-सम्मत, जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥ १ ॥
बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायौ, सो तो नाहिं सभारे ।
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारि बस सरबस हारे ॥ २ ॥
रुचिर काँच मनि देखि मूढ़ ज्यों करतल ते चिन्तामनि डारे ।
मुनि-लोचन चकोर, ससि राघव, सिव-जीवन-धन, सोउ न विचारे ॥ ३ ॥
जद्यपि नाथ तात ! मायाबस सुखनिधान सुत तुम्हहि बिसारे ।
तदपि हमहि त्यागहु जनि रघुपति, दीनबन्धु, दयालु, मेरे बारे ॥ ४ ॥
अतिसय प्रीति बिनीत बचन सुनि, प्रभु कोमल-चित-चलत न पारे ।
तुलसिदास जौ रहौं मातु-हित, को सुर-बिप्र-भूमि-भय टारे ? ॥ ५ ॥

(२)

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ?

बिपिन कोटि सुरपुर समान मोकौं जोपै पिय परिहर्यो राजु ॥ १ ॥

बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद-मूल-फल अमिय नाजु।

प्रभु पद कमल बिलोकिहौं छिन-छिन, इहितें अधिक कहा सुख-समाजु ॥ २ ॥

हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै, पति कानन कियो मुनि को साजु।

तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु ॥ ३ ॥

(३)

मैं तुम्हसों सतिभाय कही है।

बूझति और भाँति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥ १ ॥

जौ चलिहौ तौ चलो चलिकै बन, सुनि सीय मन अवलंब लही है।

बूड़त बिरह बारिनिधि मानहु नाह बचन मिस बाँह गही है ॥ २ ॥

प्राननाथ के साथ चली उठि, अवधि सोक्सरि उमगि बही है।

तुलसी सुनी न कबहुँ काहू कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥ ३ ॥

(४)

जबहि रघुपति सँग सीय चली।

बिकल-बियोग लोग-पुरतिय कहैं, अति अन्याउ, अली ॥ १ ॥

कोउ कहै, मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली।

कोउ कहै, कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिष-फलनि फली ॥ २ ॥

एक कहैं, बन जोग जानकी, बिधि-बड़ बिषम बली।

तुलसी कुलिसहु की कठोरता, तेहि दिन दलकि दली ॥ ३ ॥

(५)

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि।

जहाँ गवन कियो, कुँवर कोसलपति, बूझति सिय पिय पतिहि बिसूरि ॥ १ ॥

प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि।

करौं बयारि, बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥ २ ॥

तुलसिदास प्रभु प्रिया बचन सुनि नीरज नयन नीर आए पूरि।

कानन कहाँ अबहि सुनु सुन्दरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥ ३ ॥

(६)

फिरि फिरि राम सीय तनु हेरत।
तृषित जानि जल लेन लखन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ॥ १
अवनि कुरंग, बिहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत।
मगन न डरत निरखि कर कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ॥ २
अवलोकत मग लोग चहूँ दिसि, मनहु चकोर चंद्रमहि घेरत।
ते जन भूरि भाग भूतल पर तुलसी राम-पथिक-पद जे रत ॥ ३

(७)

नृपति-कुँवरि राजत मग जात।
सुन्दर बदन सरोरुह-लोचन, मरकत-कनक बरन मृदु गात ॥ १ ॥
अंसनि चाप, तून कटि, मुनिपट, जटा मुकुट बिच नूतन पात।
फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहिं सहज मुसुकात ॥ २ ॥
संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि, राजति बिन भूषन नव-सात।
सुखमा निरखि ग्राम-बनितनिके नयन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥ ३ ॥
अंग-अंग अगनित अनंग-छबि, उपमा कहत सुकबि सकुचात।
सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात ॥ ४ ॥

(८)

तू देखि देखि री! पथिक परम सुन्दर दोऊ।
मरकत कलधौत बरन, काम-कोटि-कान्ति हरन,
चरन-कमल कोमल अति, राज कुँवर कोऊ ॥ १ ॥
कर सर-धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंदबदनि बधू, सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए,
चितके चोर, बय किसोर लोचन भरि जोऊ ॥ २ ॥
दिनकर-कुलमनि निहारि, प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि! अनुराग ताग पोऊ।
तुलसी यह ध्यान-सुमन, जानि मानि लाभ सघन,
कृपिन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥ ३ ॥

(६)

सखि ! नीके कै निरखि कोऊ सुठि सुन्दर बटोही ।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन जोग,
बदन सोभासदन देखि हौं मोही ॥ १ ॥
साँवरे-गोरे किसोर, सुर-मुनि-चित्त-चोर,
उभय-अन्तर एक नारि सोही ।
मनहु बारिद बिधु बीच ललित अति,
राजति तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरजहि धरि, जनम सफल करि,
सुनहि सुमुखि ! जनि बिकल होही ।
को जानै, कौने सुकृत लह्यो है लोचन-लाहु,
ताहितें बारहि बार कहति तोही ॥ ३ ॥
सखिहि-सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही ।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी-सी काढ़ी,
कौन जानै, कहाँ ते आई, कौनकी कोही ॥ ४ ॥

(१०)

सखि ! सरद-बिमल-बिधु बदनि बधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी
रच्यौ रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥ १ ॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहुँ त्रिभुवन-सोभा मनहु लूटी ।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥ २ ॥

(११)

मनोहरता के मानो ऐन ।
स्यामल-गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥ १ ॥

प्रेम-रूप-सुखमा के मनसिज-सर हैं ॥ १ ॥
लोने नख-सिख, निरुपम, निरखन जोग,
बड़े उरकंधर, बिसाल भुज बर हैं।
लोने-लोने लोचन, जटनि के मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने-लोने धनुष, बिसिष कर-कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सर-धर हैं।
प्रिया प्रिय बन्धु को दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु-कुंज सिलापट्ट, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥
ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं,
लागी मधु, सरित झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुप पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहिं बिलोकि मुनिगन पुलके कहत,
भूरिभाग भए सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात-कोल,
जाको सिसकत सुर बिधि-हरि-हर हैं ॥ ५ ॥

(२१)

[illegible]र सब साधु किरात-किरातिनि राम-दरस मिटि गइ कलुषाई।
[illegible]-मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥ ६ ॥
[illegible]म केलि बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कवि कहत लजाई।
[illegible] भुवन-सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई ॥ ७ ॥
[illegible]र मिय मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर बिमल-बड़ाई।
[illegible]क सिथिल तनु, सजल सुलोचनु, प्रमुदित मन जीवन फल पाई ॥ ८ ॥
[illegible]ो कहौं चित्रकूट-गिरि, सम्पति महिमा-मोद मनोहरताई।
[illegible]सी जहँ बसि लषन राम सिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥ ६ ॥

(२२)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥ १ ॥
चहुँ दिसि बन सम्पन्न, बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देसपुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥ २ ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँग मगे सृङ्गनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि भृङ्गनि ॥ ३ ॥
सिखर परस घन घटहिं, मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥ ४ ॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अंग ॥ ५ ॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौं राम भगति के पाछे ॥ ६ ॥

(२३)

आजु को भोर, और सो माई।
सुनौं न द्वार बेद-बंदी-धुनि, गुनिगन-गिरा सोहाई ॥ १ ॥
निज निज सुन्दर पति-सदननिते रूप सील-छबि छाई।
लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आई ॥ २ ॥
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री सुमित्रा माता ?'।
तुलसी मनहु महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता ॥ ३ ॥

प्रेम-रूप-सुखमा के मनसिज-सर हैं ॥ १ ॥
लोने नख-सिख, निरुपम, निरखन जोग,
बड़े उरकधर, बिसाल भुज बर हैं।
लोने-लोने लोचन, जटनि के मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने-लोने धनुष, बिसिष कर-कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सर-धर हैं।
प्रिया प्रिय बन्धु को दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु-कुंज सिलातल, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥
ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं,
लागी मधु, सरित झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुर पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहिं बिलोकि मुनिगन पुलके कहत,
भूरिभाग भए सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात-कोल,
जाको सिसकत सुर बिधि-हरि-हर हैं ॥ ५ ॥

(२१)

आइ रहे जबतें दोउ भाई।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन-दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥ १ ॥
सीता-राम-लखन-पद अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप, त्रयताप नसाई ॥ २ ॥
उकठेउ हरित भये जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत, फलत, पल्लवत, पलुहत, बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥ ३ ॥
सरित-सरनि सरसीरुह संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥ ४ ॥
त्रिबिध समीर, नीर झर झरननि, जहँ-तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग-जप तप मन लाई ॥ ५ ॥

भए सब साधु किरात-किरातिनि राम-दरस मिटि गइ कलुषाई।
खग-मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई॥ ६॥
काम केलि बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई।
सकल-भुवन-सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई॥ ७॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई।
पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचन, प्रमुदित मन जीवन फलु पाई॥ ८॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि, सम्पति महिमा-मोद मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय आनँद-अवधि अवध बिसराई॥ ९॥

(२२)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु प्रबेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत॥ १॥
चहुँ दिसि बन सम्पन्न, बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देसपुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत॥ २॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँग मगे सृङ्गनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि भृंगनि॥ ३॥
सिखर परस घन घटहि, मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी॥ ४॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अंग॥ ५॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौं राम भगति के पाछे॥ ६॥

(२३)

आजु को भोर, और सो माई।
सुनौं न द्वार बेद-बंदी-धुनि, गुनिगन-गिरा सोहाई॥ १॥
निज निज सुन्दर पति-सदननि तें रूप सील-छबि छाई।
लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आई॥ २॥
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री सुमित्रा माता?'।
तुलसी मनहु महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता॥ ३॥

(२४)

जननी निरखति बान-धनुहियाँ
बार-बार उर-नैननि लावति प्रभु जू की ललित पनहियाँ ॥ १ ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे।
उठउ तात! बलि मातु बदन पर, अनुज-सखा सब द्वारे ॥ २ ॥
कबहुँ कहति यों, बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया।
बधु बोलि जेंइय जो भावै, गई निछावरि मैया ॥ ३ ॥
कबहुं समुझि बनगवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी।
तुलसिदास वह समय कहेतें लागति प्रीति सिखी-सी ॥ ४ ॥

(२५)

अब जब भवन विलोकति सूनो।
तब तब विकल होति कौसिल्या, दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥ १ ॥
सुमिरत बाल विनोद राम के सुदर मुनि-मन हारी।
होति हृदय अति सूल समुझि पद पंकज अजिर-बिहारी ॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई।
स्याम-तामरस नैन स्रवत जल ते कहि लेउँ उरलाई ॥ ३ ॥
जीवौं तौ विपति सहौं निसि बासर, मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो ॥ ४ ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक जनित रुज मेरो ! ॥ ५ ॥

(२६)

मेरो यह अभिलाषु विधाता।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि सेवक-सुखदाता ॥ १ ॥
सीता-सहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोऊ।
श्रवन-सुधा-सम बचन सखी कब आइ कहैगो कोऊ ! ॥ २ ॥
सुनि संदेस प्रेम परिपूरन संभ्रम उठि धावौंगी।
बदन बिलोकि रोकि लोचन-जल हरषि हिये लावौंगी ॥ ३ ॥
जनक सुता कब सासु कहै मोहि, राम लखन कहैं मैया।

बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे स्याम-गौर दोउ भैया ॥ ४ ॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति अति बाढ़ी।
थकित भई उर आनि राम छबि मनहु चित्र लिखि काढ़ी ॥ ५ ॥

(२७)

सुन्यौ जब फिर सुमन्त पुर आयो।
कहि है कहा प्रानपति की गति, नृपति बिलकि उठि धायो ॥ १ ॥
पाय परत मंत्री अति व्याकुल, नृप उठाय उर लायो।
दसरथ-दसा देखि न कह्यो कछु, हरि जो संदेस पठायो ॥ २ ॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतम की, हृदय यहै पछितायो।
सीचेहु सुत बियोग सुनिबे कहँ धिगहँ बिधि मोहि जिआयो ॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हौं न्याय नाथ बिसरायो।
हा ! रघुपति कह पर्यो अवनि, जनु जलतें मीन बिलगायो ॥ ४ ॥

(२८)

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो, री ?
'राम जाहु कानन', कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो, री ॥ १ ॥
दिनकर-बस, पिता दसरथ-से, राम-लषन से भाई।
जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौं, बिधि केहि खोरि न लाई ? ॥ २ ॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ? ॥ ३ ॥
ऐ हैं राम, सुखी सब ह्वै हैं, ईस अजस मेरो हरिहैं।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कौनि बिधि भरिहै ॥ ४ ॥

(२९)

तातें हौं देत न दूषन तोहू।
राम बिरोधी उर कठोर तें प्रगट कियो है बिधि मोहू ॥ १ ॥
सुन्दर सुखद सुसील सुधा निधि, जरनि बाइ जिहि जोए।
बिष-बारुनी-बंधु कहियत बिधु ! नातो मिटत न धोए ॥ २ ॥
होते जौ न सुजान-सिरोमनि राम सबके मन माहीं।
तौ तोरी करतूति, मातु ! सुनि, प्रीति-प्रतीति कहा हीं ? ॥ ३ ॥

मृदु मंजुल साँची-सनेह सुनि सुनत भरत-बर-बानी।
तुलसी 'साधु साधु' सुर-नर-मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥ ४ ॥

(३०)

जो पै हौं मातु मते महँ है हौं।
तौ जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वै हौं? ॥ १ ॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानि है साँची?।
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिखन बाँची? ॥ २ ॥
गहि न जाति रसना काहू की कही जाहि जोइ सूझै!
दीनबन्धु कारुण्य सिन्धु बिनु कौन हिये की बूझै? ॥ ३ ॥
तुलसी राम बियोग बिषम-बिष-बिकल नारि नर भारी।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥ ४ ॥

(३१)

काहे को खोरि कैकेयिहि लावौं?
धरहु धीर बलि जाउँ, तात! मो को आज बिधाता बावौं ॥ १ ॥
सुनिबे जोग बियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे।
सो मेरे नयननि आगे तें रघुपति बनहि सिधारे ॥ २ ॥
तुलसिदास समुझाइ भरत कहँ आँसु पोंछि उर लाए।
उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहु राम फिरि आए ॥ ३ ॥

(३२)

बिलोके दूरितें दोउ बीर।
उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल-गौर सरीर ॥ १ ॥
सीस जटा, सरसीरुह, लोचन, बने परिधन मुनिचीर।
निकट निषंग संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु-तीर ॥ २ ॥
मन अगहुँड़, तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मानो सकुच पंक महँ, कढ़त प्रेम बल धीर ॥ ३ ॥
तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाए अतिहि अधीर।
लिये उठाइ उर लाइ कृपा निधि बिरह-जनित हरि पीर ॥ ४ ॥

(३३)

भरत भए ठाढ़े कर जोरि ।

है न सकत सामुहें सकुच बस समुझि मातुकृत खोरि ॥ १ ॥
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि ।
हृदय सोच, जल भरे बिलोचन, नेह देह भइ भोरि ॥ २ ॥
बनबासी, पुरलोग, महामुनि किए हैं काठ-से कोरि ।
दै दै श्रवन सुनिबे को जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि ॥ ३ ॥
तुलसी राम-सुभाव सुमिरि, उर धरि धीरजहि बहोरि ।
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना-रसहि निचोरि ॥ ४ ॥

(३४)

जानत हौ सबही के मन की ।

तदपि, कृपालु ! करौं बिनती सोइ, सादर सुनहु दीन-हित जन की ॥ १ ॥
ए सेवक संतत अनन्य अति, ज्यों चातकहि एक गति घन की ।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन की ॥ २ ॥
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियै जैसो अहि, जासु गई मनि फन की ।
मेटहु कुल कलंक कोसलपति, आग्या देहु नाथ मोहि बन की ॥ ३ ॥
मो को जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कुमातु ते तन की ।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की ॥ ४ ॥

(३५)

रघुपति ! मोहि संग किन लीजै ?

बार बार 'पुर जाहु,' नाथ ! केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥
जद्यपि हौं अति अधम, कुटिल मति, अपराधिनि को जायो ।
प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि, सरन तकि आयो ॥ २ ॥
जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी ।
तौ परिहरहु दयालु, दीनहित, प्रभु, अभि अन्तर-साखी ॥ ३ ॥
ताते नाथ, ! कहौं मैं पुनि पुनि, प्रभु पितु, मातु-गोसाईं ।
भजन हीन नर देह बृथा, खर-स्वान-फेरु की नाईं ॥ ४ ॥
बंधु-बचन सुनि श्रवन, नयन-राजीव नीर भरि आए ।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥

(३६)

काहे को मानत हानि हिये हौ।

प्रीति-नीति-गुन-सील-धरम कहँ तुम अवलंब दिये हौ ॥ १ ॥

तात! जात जानिबे न ए दिन, करि प्रमान पितु-बानी।

ऐहौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन काल गति जानी ॥ २ ॥

तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरन पीठ निज दीन्हे।

मनहुँ सबनि के प्रान पाहरू भरत सीस धरि लीन्हे ॥ ३ ॥

(३७)

बिनती भरत करत कर जोरे।

दीनबन्धु! दीनता दीन की कबहुँ परै जनि भोरे ॥ १ ॥

तुम्ह से तुम्हहि नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।

इहै जानि, पहिचानि प्रीति, छमिए अघ औगुन मेरे ॥ २ ॥

यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लखन लाइ उर लीन्हे।

पुलक सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेम-पन कीन्हे ॥ ३ ॥

तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।

तौ प्रभु-चरन-सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ ॥ ४ ॥

(३८)

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो।

जनमि कैकेयी-कोखि कृपानिधि! क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥ १ ॥

'भरत भूप, सिय-राम-लखन बन,' सुनि सानंद सहौंगो।

पुर-परिजन अवलोकि मातु सब सुख संतोष लहौंगो ॥ २ ॥

प्रभु जानत, जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो।

आगे की बिनती तुलसी तब, जब फिरि चरन गहौंगो ॥ ३ ॥

(३९)

प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है।

कीनी छमा, नाथ! आरति तें कही कुजुगुति नई है ॥ १ ॥

यों कहि, बार बार, पाँयनि परि, पाँवरि पुलकि लई है।

अपनो अदिन देखि हौं डरपत, जेहि बिष बेलि बई है ॥ २ ॥

आए सदा सुधारि गोसाईं, जनते बिगरि गई है।
थके बचन पैरत सनेहसरि, पर्यो मानो घोर घई है॥ २॥
चित्रकूट तेहि समय सबनि की बुद्धि बिषाद हई है।
तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम नई है॥ ३॥

(४०)

जबतें चित्रकूट तें आए।
नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परन कुटी करि छाए॥ १॥
अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें।
प्रभु-पद-प्रेम-नेम-व्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें। २॥
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे।
प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे॥ ३॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु, त्यों त्यों प्रीति अधिकाई।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई॥ ४॥

(४१)

हाथ मींजिबो हाथ रह्यौ।
लगी न संग चित्रकूटहुतें, ह्याँ कहा जात बह्यौ॥ १॥
पति सुरपुर, सिय-राम-लखन बन, मुनि ब्रत भरत गह्यौ।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यौ। २॥
मेरो इ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यौ।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यौ!॥ ३॥

(४२)

हौं तो समुझि रही अपनो सो।
राम-लखन-सिय को सुख मोकहँ भयो सखी! सपनो सो॥ १॥
जिनके बिरह-बिषाद बँटावन खग-मृग जीव दुखारी।
मोहि कहा सजनी समुझावति, हौं तिन्हकी महतारी॥ २॥
भरत-दसा सुनि, सुमिरि भूपगति, देखि दीन पुरवासी।
तुलसी 'राम' कहति हौं सकुचति, ह्वै है जग उपहासी॥ ३॥

(४३)

आली! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे!
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातु हेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत, जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाय लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल, सदा सोवत-से खान-पान बिसराए।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभु के बिरह-बधिक हठि राजहंस-से जोरे।
ऐसे हु दुखित देखि हौं जीवति राम-लखन के घोरे ॥ ४ ॥

(४४)

राघौ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहिं सिधावौ ॥ १ ॥
जे पय प्याइ, पोखि करपंकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाडिले, ते अब निपट बिसारे ॥ २ ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम-मारे ॥ ३ ॥
सुनहु पथिक! जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु-सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्ह को बड़ो अँदेसो ॥ ४ ॥

(४५)

काहू सों काहू समाचार ऐसे पाए।
चित्रकूट तें राम-लखन-सिय सुनियत अनत सिधाए ॥ १ ॥
सैल, सरित, निरझर, बन, मुनि-थल-देखि-देखि सब आए।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक, मानस-सुगम सुहाए ॥ २ ॥
बढ़ि अवलंब बाम-बिधि-बिघटित बिषम बिषाद बढ़ाए।
सिरिस-सुमन-सुकुमार मनोहर बालक बिंध्य चढ़ाए ॥ ३ ॥
अवध सकल नर नारि बिकल अति अकनि बचन अनभाए।
तुलसी राम-बियोग-सोग-बस, समुझत नहिं समुझाए ॥ ४ ॥

अरण्यकाण्ड

[यह पद गीतावली के अरण्यकाण्ड से सग्रहीत हैं। राम पचवटी में निवास करते हैं। रावण सीता को हर कर ले जाता है। उनके वियोग से व्यथित राम वन-वन में सीता को खोजते फिरते हैं, अन्त में शबरी के आश्रम में आते हैं। अत्यन्त प्रेम से खिलाए गए झूठे बेरों को भी राम बहुत प्रसन्नता-पूर्वक खाते हैं।]

(१)

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर।
मानत मनहु सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टँकोर ॥ १ ॥
कँपै कलाप बर बरहिं फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर।
जहँ जहँ प्रभु बिचरत, तहँ तहँ सुख दडक बन कौतुक न थोर ॥ २ ॥
सघन छाँह-तम रुचिर रजनि भ्रम, बदन चन्द चितवत चकोर।
तुलसी मुनि खग-मृगनि सराहत, भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर ॥ ३ ॥

(२)

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥ १ ॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत, ज्यौं नवघन सुधा-सरोवर खोरे ॥ २ ॥
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहिं कठ-रेखें चित चोरे।
अवलोकन मुख देत परम सुख, लेत सरद ससि की छबि छोरे ॥ ३ ॥
जटा मुकुट सिर, सारस नयननि गौहैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिस मिति फोरे ॥४॥
चितवत चकित कुरंगिनि, सब भए मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेम बस भोरे ॥ ५ ॥

(३)

कर सर-धनु, कटि रुचिर निषग।
प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन-बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग सग ॥ १ ॥

(४३)

आली ! हौं इन्हहि बुझावौं कैसे !

लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातु हेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत, जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाय लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल, सदा सोवत-से खान-पान बिसराए ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभु के बिरह-बधिक हठि राजहंस-से जोरे ।
ऐसे हु दुखित देखि हौं जीवति राम-लखन के घोरे ॥ ४ ॥

(४४)

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।

ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहि सिधावौ ॥ १ ॥
जे पय प्याइ, पोखि करपंकज बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले, ते अब निपट बिसारे ॥ २ ॥
भरत सौ गुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहि दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम-मारे ॥ ३ ॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु-सदेसो ।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्ह को बड़ो अँदेसो ॥ ४ ॥

(४५)

काहू सौं काहू समाचार ऐसे पाए ।

चित्रकूट तें राम-लखन-सिय सुनियत अनत सिधाए ॥ १ ॥
सैल, सरित, निरझर, बन, मुनि-थल-देखि-देखि सब आए ।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक, मानस-सुगम सुहाए ॥ २ ॥
बढ़ि अवलम्ब बाम-बिधि-बिघटित बिषम बिषाद बढ़ाए ।
सिरिस-सुमन-सुकुमार मनोहर बालक बिंध्य चढ़ाए ॥ ३ ॥
अवध सकल नर नारि बिकल अति अकनि बचन अनभाए ।
तुलसी राम-बियोग-सोग-बस, समुझत नहिं समुझाए ॥ ४ ॥

अरण्यकाण्ड

[यह पद गीतावली के अरण्यकाण्ड से संग्रहीत हैं। राम पंचवटी में निवास करते हैं। रावण सीता को हर कर ले जाता है। उनके वियोग से व्यथित राम वन-वन में सीता को खोजते फिरते हैं, अन्त में सबरी के आश्रम में आते हैं। अत्यन्त प्रेम से खिलाए गए झूठे बेरों को भी राम बहुत प्रसन्नता-पूर्वक खाते हैं।]

(१)

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर।
मानत मनहु सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टँकोर ॥ १ ॥
कँपै कलाप बर बरहिं फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर।
जहँ जहँ प्रभु बिचरत, तहँ तहँ सुख दंडक बन कौतुक न थोर ॥ २ ॥
सघन छाँह-तम रुचिर रजनि भ्रम, बदन चन्द चितवत चकोर।
तुलसी मुनि खग-मृगनि सराहत, भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर ॥ ३ ॥

(२)

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥ १ ॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत, ज्यौं नवघन सुधा-सरोवर खोरे ॥ २ ॥
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहिं कंठ-रेखें चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख, लेत सरद ससि की छबि छोरे ॥ ३ ॥
जटा मुकुट सिर, सारस नयननि गौहैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे ॥ ४ ॥
चितवत चकित कुरंगिनि, सब भए मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेम बस थोरे ॥ ५ ॥

(३)

कर सर-धनु, कटि रुचिर निषंग।
प्रिया-प्रीत-प्रेरित बन-बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग ॥ १ ॥

भुज बिसाल, कमनीय कंध-उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग।
मनु मुकुता मनि मरकत गिरि पर लसत ललित रवि-किरनि प्रसंग ॥ २ ॥
नलिन नयन, सिर जटा-मुकुट, बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग।
तुलसिदास ऐसी मूरति की बलि, छबि बिलोकि लाजैं अमित अनंग ॥ ३ ॥

(४)

राघव, भावति, मोहि बिपिन की बीथिन्ह धवनि।
अरुन-कंज-बरन चरन सोक हरन, अंकुस-कुलिस-केतु अंकित अवनि ॥ १ ।
सुन्दर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेखलनि।
कनक-कुरंग संग, साजेकर सर-चाप, राजिव नयन इत उत चितवनि ॥ २ ।
सोहत सिर मुकुट जटा-पटल-निकर, सुमन-लता सहित रची बनवनि।
तैसेइ स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिइ ललित भ्रकुटिन्ह की नवनि ॥ ३ ।
देखत खग-निकर मृग रवनिन्ह जुत, थकित बिसारि जहाँ-तहाँ की भवनि।
हरि-दरसन-फल पायो है ग्यान बिमल, जाँचत भगति, मुनि-चाहत जवनि ॥ ४
जिन्ह के मन मगन भए हैं रस सगुन, तिन्ह के लेखे अगुन- मुकुति कवनि।
श्रवन-सुख करनि, भव सरिता-तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि ॥ ५

(५)

रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‌यो।
लषन पुकारि, राम हरुए कहि मरतहु बैर सभार्‌यो ॥ १ ॥
सुनहु तात! कोउ तुम्हहि पुकारत प्राननाथ की नाईं।
कह्यो लषन, हत्यो हरन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआईं ॥ २ ॥
बन्धु बिलोकि कहत तुलसी प्रभु 'भाई! भलो न कीन्हीं।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं' ॥ ३ ॥

(६)

आरत बचन कहति बैदेही।
बिलपति भूरि बिसूरि दूरि गए मृग सँग परम सनेही ॥ १ ॥
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै।
देखि बधिक-बस राजमरालिनि लषन लाल! छिनि लीजै ॥ २ ॥

बन देखनि खिग कहत कहति यों, सुन करि मीन हरी हौं।
सीतल-कर सुरधेनु, नाथ! ज्यों, त्यों परनाम खरी हौं ॥ ३ ॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो।
पुत्रि पुत्रि! जनि डरहि, न जैहै नीचु 'मीचु हौं आयो'॥ ४ ॥

(७)

फिरत न बारहि बार प्रचार्यो।
चपरि चोंच-चंगुल हय हति, रथ खंड खंड करि डार्यो ॥ १ ॥
बिरथ बिकल कियो, छीनि लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलान्यो।
तब असि काढ़ि, काटि पर, पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यो ॥ २ ॥
राम काज खगराज आजु लर्यो, जियत न जानकि त्यागी।
तुलसिदास सुर-सिद्ध सराहत, धन्य बिहँग बड़भागी ॥ ३ ॥

(८)

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि-खग-मृग मानो कबहुँ न हे।
मुनि न मुनि बधूटी, उजरी परन कुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥ १ ॥
उठी न सलिल लिए, प्रेम प्रमुदित हिए,
प्रिया न पुलकि प्रिय बचन कहे।
पल्लव सालन हेरी, प्रान बल्लभी न टेरी,
बिरह बिथकि लखि लखन गहे ॥ २ ॥
देखे रघुपति गति, बिबुध बिकल अति,
तुलसी गहन बिनु दहन दहे।
अनुज दियो भरोसो, तौलौं है सोचु खरो सो,
सिय समाचार प्रभु जौलौं न लहे ॥ ३

(९)

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो बपु बीति बादि कानन, ज्यों कलपलता दव-

किष्किन्धाकाण्ड

[यह पद 'गीतावली' के किष्किधा-काण्ड से लिये गए हैं। सीता की खोज लगाते हुए राम ऋष्यमूक पर पहुँचते हैं। वहाँ पर उनकी मित्रता वानरराज सुग्रीव से होती है जो उनको सीता द्वारा फेंके गए वस्त्राभूषण दिखला करके उनको खोज करा देने का आश्वासन देता है। वर्षा बीतने के उपरान्त शरद ऋतु भी आजाती है किन्तु सीता का पता नहीं चलता।]

(१)

भूषन-बसन बिलोकत सिय के।
प्रेम-बिबस मन कप पुलक तनु, नीरज नयन नीर भरे पियके॥ १॥
सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह-सुगुन गन तिय के।
स्वामि-दसा लखि लखन-सखा-कपि, पिघले हैं आँच माठ मनो घिय के॥ २॥
सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकिय के।
बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिवेक बीर रस बिय के॥ ३॥
धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल-उपाय उघटत निज हियके।
तुलसिदास यह समउ कहेतें कवि लागत निपट निठुर जड़ जियके॥ ४॥

(२)

प्रभु कपि नायक बोलि कह्यो है।
बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहिं सिय सोधु लह्यो है॥ १॥
जा कारन तजि लोक लाज, तनु राखि बियोग सह्यो है।
ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है॥ २॥
सुनि सुग्रीव सभीत नमित-मुख, उतर न देन चह्यो है।
आइ गए हरि-जूथ, देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है॥ ३॥
पठये बदि बदि अवधि दसहु दिसि, चले बलु सबनि गह्यो है।
तुलसी सिय लगि भव-दधि निधि मनु फिर हरि चहत मह्यो है॥ ४॥

सुन्दरकाण्ड

[यह पद 'गीतावली' के सुन्दर काण्ड में लिये गए हैं। राम की आज्ञा पाकर हनुमानजी सीता की खोज करते हुए लङ्का पहुँच जाते हैं, वहाँ पर विषयवदना सीता को देखकर वह बहुत दुखी होते हैं, उन्हें राम की अँगूठी दिखलाकर सान्त्वना देते हैं तथा राम को सीता का समाचार देते हैं। उधर रावण द्वारा निरादृत विभीषण राम की शरण में आते हैं। करुणामय राम उसे अभयदान देकर लङ्का का राजतिलक कर देते हैं।]

(१)

देखी जानकी जब जाइ।
परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाइ ॥ १ ॥
कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि।
मनहु मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि ॥ २ ॥
रटति निसि बासर निरंतर राम राजिव नैन।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन ॥ ३ ॥
नाथ के गुनगाथ कहि कपि दई मुँदरी डारि।
कथा सुनि उठि लई कर बर, रुचिर नाम निहारि ॥ ४ ॥
हृदय हरष-बिषाद अति पति मुद्रिका पहिचानि।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि ॥ ५ ॥

(२)

बोलि, बलि, मूँदरी! सानुज कुसल कोसलपालु।
अमिय-बचन सुनाइ मेटहि बिरह-ज्वाला-जालु ॥ १ ॥
कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु।
रोष छमि सुधि करत कबहू ललित लछमन लालु ॥ २ ॥
परसपर पति देवरहि का होति चरचा चालु।
देवि! कहु केहि हेतु बोले बिपुल बानर-भालु ॥ ३ ॥
सील निधि समरथ सुसाहिब दीनबन्धु दयालु।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हालु ॥ ४ ॥

(७)

कहु, कपि ! कब रघुनाथ कृपा करि हरिहैं निज बियोग-सम्भव दुख ।
राजिवनयन, मदन-अनेक छबि, रबिकुल-कुमुद-सुखद, मयंक मुख ॥ १ ॥
बिरह-अनल स्वासा-समीर निज तनु जरिबे कहँ रही न कछु सक ।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन, दिन अरु रैन रहत एकहि तक ॥ २ ॥
सुदृढ़ ग्यान अवलंबि, सुनहु सुत ! राखति प्रान बिचारि दहन मत ।
सगुन रूप, लीला-बिलास-सुख सुमिरति करति रहति अंतरगत ॥ ३ ॥
सुनु हनुमन्त ! अनंत-बंधु करुनासुभाव सीतल कोमल अति ।
तुलसिदास यहि त्रास जानि जिय, बरु दुख सहौं, प्रगट कहि न सकति ॥ ४ ॥

(८)

कबहुँ, कपि ! राघव आवहिंगे !
मेरे नयनचकोर प्रीतिबस राकससि मुख दिखरावहिंगे ॥ १ ॥
मधुप, मराल, मोर, चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग-अंग छबि भिन्न-भिन्न सुख निरखि-निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥ २ ॥
बिरह अगिनि जरि रही लता ज्यों, कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज बियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥ ३ ॥
लोकपाल, सुर, नाग, मनुज सब परे बन्दि कब मुकुतावहिंगे !
रावनबध रघुनाथ-बिमल-जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥ ४ ॥
यह अभिलाष रैन दिन मेरे, राज बिभीषन कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम, भेदबुद्धि कब बिसरावहिंगे ? ॥ ५ ॥

(९)

सत्य-बचन सुनु मातु जानकी !
जन के दुख रघुनाथ दुखित, अति सहज प्रकृति करुनानिधान की ॥ १ ॥
तुव बियोग-सम्भव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुजान की ।
ननु कहु, कहँ रघुपति-सायक-रबि तम-अनीक कहँ जातुधान की ॥ २ ॥
कहँ हम पसु साखा मृग चंचल, बात कहौं मैं बिद्यमान की ।
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ग्यानघन, नहिं बिसरति वह लगनि कान की ॥ ३ ॥

बार बार बर बारिजलोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहु बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि-तकि धरि धीरज तारति ॥ २ ॥
तुलसिदास यद्यपि निसिबासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।
मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अन्तरगति हारति ॥ ३ ॥

(१८)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि ! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ॥ १ ॥
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरन्तर लोचनन-कोन।
'हा' धुनि-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥ २ ॥
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहु, तेहि मग पगु न धर्यो तिहु-पौन ॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु ! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख, हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन ॥ ४ ॥

(१९)

कपि के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल, भए सजल सरोरुह नैन ॥ १ ॥
सिय बियोग-सागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित-चैन।
लही नाव पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन ॥ २ ॥
सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन गिरा बिपुल ब्याकुल उर-ऐन।
ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सनमुख सहै बिरह-सर पैन ॥ ३ ॥
धरि धरि धीर बीर कोसलपति किए जतन, सके उत्तर दै न।
तुलसिदास प्रभु सखा-अनुजसों सैनहिं कह्यो, चलहु सजि सैन ॥ ४ ॥

(२०)

आए देखि दूत, सुनि सोच खल-मन में।
बाहर बजावै गाल, भालु-कपि कालबस
मोसे बीर सों चाहत जीत्यो रारि रन में ॥ १ ॥

मंगलमूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगल के खनै।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ? ॥ २ ॥
नाम-प्रताप पतितपावन किए जे न अघाने अघ अनै।
कोउ बनटो, कोउ सूखो जरि भए राजहंस बायस-तनै ॥ ३ ॥
हुतो ललाट कुअंगात खात खरि, मोद पाइ कोदो कनै।
सो तुलसी चातक भयो जाचत राम स्याम सुन्दर घनै ॥ ४ ॥

(२९)

गये राम सरन सबको भलो।
ग्यानी-गरीब, बड़ो-छोटो, बुध-मूढ़, हीनबल-अतिबलो ॥ १ ॥
पंगु अंध, निरगुनी निसंबल, जो न लहै जाचे जलो।
सो निबह्यो नीके, जो जनमि जग राम-राज मारग चलो ॥ २ ॥
नाम-प्रताप दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुतहित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल-सो खलो ॥ ३ ॥
प्रभुपद प्रेम प्रनाम-कामतरु सद्य बिभीषन को फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ-जल-थलो ॥ ४ ॥

(३०)

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल, कृपाअयन,
मयननि बहु छबि अंगनि दूरति ॥ १ ॥
सिरसि जटा-कलाप, पानि सायक-
चाप, उरसि रुचिर बनमाल लूरति।
तुलसिदास रघुबर की सोभा सुमिरि,
भई है मगन नहिं तन की सूरति ॥ २ ॥

(३१)

बहु, कबहुँ देखिहौं आली ! आरज-सुवन।
सानुज सुभग-तनु जबतें बिछुरे बन,
तबतें दव-सी लगी तीनिहू भुवन ॥ १ ॥

मूरति सुरति किये प्रगट प्रीतम हिये,
मन के करन चाहैं चरन छुवन।
चित चढ़िगो बियोग-दसा न कहिबे जोग,
पुलक गात, लागे लोचन चुवन ॥ २ ॥
तुलसी त्रिजटा जानी, सिय अति अकुलानी
मृदुबानी कह्यो ऐहैं दवन-दुवन।
तमीचर-तम-हारी सुरकंज-सुखकारी,
रबिकुल रबि अब चाहत उवन ॥ ३ ॥

(३२)

अबलौं मैं तोसों न कहे री।
सुनु त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ॥ १ ॥
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ॥ २ ॥
सर सरीर सूखे प्रान-बारिचर जीवन-आस तजि चलनु चहे री।
तैं प्रभु-सुजस सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृप्ति लहे री ॥ ३ ॥
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक-बल-धीर सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीर सुत पैरि गहे री ॥ ४ ॥
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन-कानन भरिपूर रहे री।
अब सखि सिय सँदेह परिहरु हिय, आइ गए दोउ बीर अहे री ॥ ५ ॥

(३३)

सिय ! धीरज धरिये, राघौ अब ऐहैं।
पवनपूत पै पाइ तिहारी सुधि, सहज कृपालु, बिलम्ब न लैहैं ॥ १ ॥
सेन साजि कपि-भालु काल सम कौतुक ही पयोधिसन बँधैहैं।
घेरिहैं पै देखिबो लंकगढ़, बिकल जातुधानी पछितैहैं ॥ २ ॥
निसिचर-सलभ कृसानु राम-सर उड़ि उड़ि परत जरत जड़ जैहैं।
रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ॥ २ ॥

तिलक सारि, अनाथ विभीषन, अभय-बाँह दै अमर बसैहैं।
जय धुनि मुनि, बरषिहैं सुमन सुर, ब्योम बिमान निसान बजैहैं ॥ ४ ॥
बधु समेत मानवल्लभ पद परसि-सकल परिताप नसैहैं।
राम बाम दिसि पेखि तुमहि सब नयनवत लोचन-फल पैहैं ॥ ५ ॥
मुन श्रति हित चितइहाँ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहि चितैहैं।
यह सोभा, सुख-समय बिलोकत काहु तो पलकैं नहिं लैहैं ॥ ६ ॥
करि कुल-लखन-सुजस-जय-जानकि सहित कुसल निज नगर सिधैहैं।
प्रेम पुलकि आनन्द मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं ॥ ७ ॥

लंकाकाण्ड

[यह पद गीतावली के लंकाकाण्ड से सकलित हैं। अंगद रावण को सुबुद्धि देने की चेष्टा करता है, लेकिन रावण उसकी उपेक्षा कर देता है। राम-रावण युद्ध होता है। युद्ध में लक्ष्मण मूर्छित होजाते हैं, राम विलाप करते हैं, लेकिन हनूमानजी के सजीवन बूटी लाने पर लक्ष्मण पुनर्जीवित हो जाते हैं। अन्त में रावण को मारकर राम अवध लौटते हैं, राम के स्वागत में अवध में समारोह मनाए जाते हैं।]

(१)

मानु अजहूँ सिख परिहरि क्रोधु।
पिय पूरो आयो अब काहि, कहु, करि रघुबीर बिरोधु ॥ १ ॥
जेहि ताड़का-सुबाहु मारि, मख राखि जनायो आपु।
कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यो बिसिख-प्रतापु ॥ २ ॥
सकल भूप बल गरब सहित तोरयो कठोर सिव चापु।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग, हरयो परसुधर-दापु ॥ ३ ॥
कपट काक साँसति-प्रसाद करि बिनु श्रम बध्यो बिराधु।
खर-दूषन त्रिसरा-कबंध हति कियो सुखी सुर-साधु ॥ ४ ॥
एकहि बान बालि मारयो जेहि, जो बल-उदधि अगाधु।
कहु, धौं कत कुसल बीती केहि किये राम अपराधु ॥ ५ ॥

लाँघि न सके लोक विजयी तुम जासु अनुज-कृत रेखु।
उतरि सिंधु जार्यो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेखु ॥ ६ ॥
कृपासिंधु, खलबन कृसानु सम, जस गावत श्रुति-सेषु।
सोइ बिरदैत बीर कोसलपति, नाथ! समुझि जिय देखु ॥ ७ ॥
मुनि पुलस्त्य के जस मयंक महँ कत कलंक हठि हाहि।
और प्रकार उधार नहीं कहुँ, मैं देख्यो जग जोहि ॥ ८ ॥
चलु, मिलु बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि।
तुलसिदास प्रभु सरन-सबद सुनि अभय करेंगे तोहि ॥ ६ ॥

(२)

तू दसकंठ भले कुल जायो।
जामहँ सिव सेवा, बिरंचि-बर, भुजबल बिपुल जगत जसु पायो ॥ १ ॥
खर-दूषन-त्रिसिरा, कबंध रिपु जेहि बाली जमलोक पठायो।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ सँदेस कहन हौं आयो ॥ २ ॥
श्रीमद नृप-अभिमान मोह बस, जानत अनजानत हरि लायो।
तजि ब्यलीक भजु कारुनीक प्रभु, दै जानकिहि सुनहि समुझायो ॥ ३ ॥
जातें तव हित होइ, कुसल कुल, अचल राज चलिहै न चलायो।
नाहिं त राम प्रताप-अनल महँ ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ॥ ४ ॥
जदपि अंगद नीति परम हित कह्यो, तथापि न कछु मन भायो।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति, पावक जरत मनहु घृत नायो ॥ ५ ॥

(३)

मैं तेरो मरम कछु नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर! मोहि दास-ज्यों डाटन आयो ॥ १ ॥
भ्राता कुम्भकरन रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों, कन्दुक ज्यों कैलास उठायो ॥ २ ॥
सुर, नर, असुर, नाग, खग, किंनर, सकल करत मेरो मन भायो।
निसिचर रुचिर अहार मनुज-तनु, ताको जस खल! मोहि सुनायो ॥ ३ ॥
कहा भयो बानर सहाय मिलि, करि उपाय जो सिन्धु बँधायो।
को तरिहै भुज बोरि घोर निधि, ऐसो को त्रिभुवन में जायो? ॥ ४ ॥

सुनि दससीस-बचन कपि-कुंजर बिहँसि ईस-मायहि सिर नायो ।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो ॥ ५ ॥

(४)

सुनु मन ! मैं तोहि बहुत बुझायो ।
एतो मान सठ ! भयो मोहबस, जानत हू चाहत बिष खायो ॥ १ ॥
जगत-बिदित अति बीर बालि-बल जानत हौ, किधौं अब बिसरायो ।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर, सरनागत पर प्रेम दिखायो ॥ २ ॥
पायहुगे निज करम-जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो ।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत, तब ह्वैहै पछितायो ॥ ३ ॥
हौं ही दसन तोरिबे लायक, कहा करौं, जो न आयसु पायो ।
अब रघुबीर-बान-बिदलित उर सोवहिगो रन भूमि सुहायो ॥ ४ ॥
अबिचल राज बिभीषन को सब, जेहि रघुनाथ चरन चित लायो ।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि नृप-जायो ॥ ५ ॥

(५)

राम लषन उर लाय लए हैं ।
भरे नीर राजीव-नयन, सब अँग परिताप तए हैं ॥ १ ॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथए हैं ।
सेवक सखा भगति-भायप-गुन चाहत अब अथए हैं ॥ २ ॥
निज कीरति-करतूति, तात ! तुम सुकृती सकल जए हैं ।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लए हैं ॥ ३ ॥
मेरे पन की लाज इहाँलौं हठि प्रिय प्रान दए हैं ।
लागति साँगि बिभीषन ही पर, सीपर आपु भए हैं ॥ ४ ॥
सुनि प्रभु-बचन भालु कपि-गन, सुर सोच सुखाइ गए हैं ।
तुलसी आइ पवनसुत, बिधि मानो फिरि निरमये नए हैं ॥ ५ ॥

(६)

मोपै तो न कछू ह्वै आई ।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लषन-सो भाई ॥ १ ॥

पुर, पितु मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई ।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ॥ २ ॥
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई ।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न आई ॥ ३ ॥
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनो गँवाइ ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाइ ॥ ४ ॥

(७)

मेरो सब पुरुसारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥ १ ॥
सुनु, सुग्रीव ! साँचेहू मो पर फेर्यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन-सो भ्राता ॥ २ ॥
गिरि, कानन जैहैं साखा मृग, हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥ ३ ॥
तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु-कपि सकल बिकल हिये हारे ।
जामवन्त हनुमत बोलि तब, औसर जानि प्रचारे ॥ ४ ॥

(८)

जौ हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यौं, आनि सुधा सिर नावौं ॥ १ ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥ २ ॥
बिबुध बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं, सबहि को पापु बहावौं ॥ ३ ॥
तुम्हारिहि कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ४ ॥

(९)

कौतुक ही कपि कुधर लियो है ।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि, सरिस न बेगि बियो है ॥ १ ॥

(१)

बनतें आइ के राजा राम भए भुआल।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल॥ १॥
मिटे कलुष-कलेस-कुलषन, कपट-कुपथ-कुचाल।
गए दारिद, दोष दारुन, दम्भ-दुरित-दुकाल॥ २॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनि गन लाल।
नारि-नर तेहि समय सुकृती, भरे भाग सुभाल॥ ३॥
बरन-आस्रम-धरमरत, मन बचन बेष मराल।
राम-सिय-सेवक-सनेही, साधु, सुमुख, रसाल॥ ४॥
राम-राज-समाज बरनत सिद्ध-सुर-दिगपाल।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल॥ ५॥

(२)

रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटि मयन,
करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई।
देखो सखि अतुलित छबि, संत-कंज-कानन रबि,
गावत कल कीरति कबि-कोबिद-समुदाई॥ १॥
मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंस बीर,
सेवत पद कमल धीर निरमल चित लाई।
ब्रह्म मण्डली-मुनींद्रवृन्द-मध्य इंदुबदन,
राजत सुखसदन लोक लोचन-सुखदाई॥ २॥
बिथुरित सिरसिरुह-बरूथ कुंचित, बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई॥ ३॥
ललित भ्रुकुटि, तिलक भाल, चिबुक-अधर-द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल, नासिका सुहाई।
मधुकर जुग पंकज बिच, सुक बिलोकि नीरज पर,
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई॥ ४॥

सुन्दर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून-रचित, बिबिध बिधि बनाई।
तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीर पाँति रुचिर,
हेमजाल अंतर परि ताते न उड़ाई ॥ ५ ॥
संकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि चंचरीक,
निर्व्यलीक-मानस-गृह संतत रहे छाई।
अतिसय आनंदमूल, तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥ ६ ॥

(३)

राजत रघुबीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर-
हरन सकल सरजु तीर निरखहु, सखि ! सोहैं।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज बल-बिभंग-करन,
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहैं ॥ १ ॥
सुखमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि निरखि नील,
कुंचित कच, कुंडल कल, नासिका चित पोहैं।
मनहु इन्दुबिम्ब मध्य कंज-मीन खंजन लखि,
मधुप मकर-कीर आए तकि तकि निज गोहैं ॥ २ ॥
ललित गंड मंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक,
मंजुतर मयंक-अंक रुचिर बंक भौहैं।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन-दमक दामिनि दुति।
हुलसति हिय हँसनि चारु, चितवनि तिरछौहैं ॥ ३ ॥
कंबुकंठ, भुज बिसाल, उरसि तरुन तुलसिमाल,
मंजुल मुक्तावलि जुत जागति जिय जोहैं।
जनु कलिंद-नंदिनि मनि-इन्द्र नील-सिखर परसि,
धँसति लसति हंस सेनि-संकुल अधिकौहैं ॥ ४ ॥
दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य, रुचिर चंपक जय,
चंचला-कलाप, कनक निकर अलि ! किधौं है।

सञ्जन-नयन-भवन-निकेत, भूषन-मनिगन समेत,
रूप-जलधि-वपुष लेत मन-मयंद बोहैं ॥ ५ ॥
अवनि वचन-चातुरी, तुरीय पेखि प्रेम-मगन
पग न परत इत उत, सब चक्ति तेहि समी हैं।
तुलसिदास यह सुधि नहिं कौन की, कहाँ ते आईं,
कौन काज, काके ढिग, कौन ठाउँ को हैं ॥ ६ ॥

(४)

देखि सखि! आजु रघुनाथ-सोभा बनी।
नील-नीरद-बरन वपुष भुवनाभरन,
पीत-अंबर-धरन हरन दुति दामिनी ॥ १ ॥
सरजु मज्जन किए, संग सज्जन लिये,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी।
सजनि! आवत भवन मत्त-गजवर-गवन,
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसल धनी ॥ २ ॥
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,
करनि बिवरत चतुर, सरस सुषमा जनी।
ललित अहि-सिसु निकर मनहु ससि सन समर,
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥ ३ ॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक,
चारु भ्रू, नासिका सुभग सुक-आननी।
चिबुक सुन्दर, अधर अरुन, द्विज-दुति सुघर,
बचन गंभीर, मृदुहास भव-भाननी ॥ ४ ॥
स्रवन कुंडल बिमल गंड मंडित चपल,
कलित कलकांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी।
जुगल कंचन-मकर मनहु बिधुकर मधुर,
पियत पहिचानि करि सिंधु कीरति भनी ॥ ५ ॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल चहुँ पास बनि गज मनी।

स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर-कला,
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥ ६ ॥
मंदिरनि पर खरी नारि आनन्द-भरी,
निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम कुंकुम-कनी।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम-सतकोटि-मद हरत छबि आपनी ॥ ७ ॥

(५)

(क)

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजू के तीर।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर ॥
पुर नर-नारि चतुर अति, धरमनिपुन, रत नीति।
सहज सुभाय सकल उर श्री रघुबर पद-प्रीति ॥
श्रीरामपद-जलजात सबके प्रीति अबिरल पावनी।
जो चहत सुक-सनकादि, संभु-बिरंचि, मुनि-मन-भावनी ॥
सबहीं के सुंदर मंदिराजिर, राउ रंक न लखि परै।
नाकेस-दुरलभ भोग लोग करहिं, न मन बिषयनि हरै ॥ १ ॥

(ख)

गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार।
चित्र बिचित्र चहुँ दिसि परदा फटिक पगार ॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटो पुरट की झरकत मरकत भौंर ॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहुँ बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही ॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नव सुमन माल सुगन्ध लोभे मंजु, गुंजत मधुकरा ॥२॥

(ग)

झुंड झुंड झूलन चलीं गजगामिनि बर नारि।
कुसुंभि चीर तनु सोहहीं, भूषन बिबिध सँवारि ॥

चिबयनी मृगलोचनी, सारद ससि सम तुंड।
गान सुबस सब गावहीं, सुसुर सु सारँग गुंड॥
सारँग, गुंड मलार, सोरठ, सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान-तरंग सुनि गंधरब, किंनर लाजहीं॥
अति मचत, छूटत कुटिल कच, छबि अधिक सुन्दरि पावहीं।
पट उड़त, भूषन खसत, हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं॥३॥

(६)

साँझ समय रघुबीर-पुरी की सोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवध-धनी॥ १॥
फटिक-भीत-सिखरन पर राजति कंचन-दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मन-सोभित सहसफनी॥ २॥
प्रति मन्दिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।
मानहु प्रगटि बिपुल लोहित पुर पठइ दिये अवनी॥ ३॥
घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक-गनी।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं, जो कलिमल-समनी॥ ४॥

(७)

अवध नगर अति सुंदर बर सरिता के तीर।
नीति-निपुन नरतिय सबहिं, धरम धुरंधर धीर॥ १॥
सकल रितुन्ह सुखदायक, तामहँ अधिक बसंत।
भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकंत॥ २॥
बन उपबन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर-खग, पिकबर, गुंजत भृंग॥ ३॥
समय बिचारि कृपानिधि, देखि द्वार अति भीर।
खेलहु मुदित नारिनर, बिहँसि कहेउ रघुबीर॥ ४॥
नगर-नारि-नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखि राम-छबि अतुलित उमगत उर अनुरागु॥ ५॥
स्याम-तमाल-जलद तनु निरमल पीत दुकूल।
अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल॥ ६॥

(८)

देखत अवध को आनन्द।
हरषि बरषत सुमन दिन दिन देवननि को वृन्द ॥ १ ॥
नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बंद।
निपट लागत अगम, ज्यों जलचरहि गमन सुछंद ॥ २ ॥
मुदित पुर लोगनि सराहत निरखि सुखमा कंद।
जिन्हके सु अलि-चख पियत राम-मुखारबिंद-मरंद ॥ ३ ॥
मध्य ब्योम बिलंबि चलत दिनेस-उडुगन-चंद।
राम पुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वन्द ॥ ४ ॥

(६)

पालत राज यों राजा राम धरम धुरीन।
सावधान, सुजान, सब दिन रहत नय-लयलीन ॥ १ ॥
स्वान-खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन।
नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचु बिहीन ॥ २ ॥
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन।
सकल चाहत राम ही, ज्यों जल अगाधहि मीन ॥ ३ ॥
गाइ राज-समाज जाँचत दास तुलसी दीन।
लेहु निज करि, देहु निज-पद-प्रेम पावन पीन ॥ ४ ॥

(१०)

चरचा चरननि सों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत मुख सुनि लोक धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥ १ ॥
प्रिया निज अभिलाष-रुचि कहि, कहति सिय सकुचाइ।
तीय तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥ २ ॥
जानि करुनासिंधु भावी-बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर भोरहिं लिए लखन बोलाइ ॥ ३ ॥
'तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीक मुनीस आश्रम आइयहु पहुँचाइ' ॥ ४ ॥
'भलेहि नाथ', सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक धरम अवधि अघाइ ॥ ५ ॥

(१६)

बालक सीय के विहरत मुदित-मन दोउ भाइ।
नाम लव-कुस राम-सिय अनुहरति सुन्दरताइ॥ १॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्ह के बाल वृन्द बोलाइ॥ २॥
भूप-भूषन-बसन-बाहन, राज-साज सजाइ।
बरम-चरम, कृपान-सर, धनु-तून लेत बनाइ॥ ३॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात, सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥ ४॥

(१७)

कैकेयी जौलौं जियति रही,
तौलौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥ १॥
मानी राम अधिक जननी तें, जननिहु गँस न गही।
सीय-लखन-रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही॥ २॥
लोक-बेद-मरजाद दोष-गुन-गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही॥ ३॥

विनय-पत्रिका

(१६)

[यह पद गोस्वामीजी कृत 'विनय-पत्रिका' में सकलित है। भक्ति और दैन्य का जैसा उज्ज्वल रूप विनय-पत्रिका में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। गोस्वामीजी की भाव-प्रवणता तथा मार्मिकता इस ग्रन्थ-रत्न में पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित होती है। गोस्वामीजी की शुद्ध काव्य शक्ति का स्वरूप इसमें 'मानस' की भी अपेक्षा अधिक निर्मल है।]

(१)

जागु जागु जीव जड़ ! जो है जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति संताप रे।
बूड्यो मृग बारि, खायो जेवरी को साँप रे ॥
कहैं बेद बुध तूतो बूझि मन माहिं रे।
'दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं रे' ॥
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहुँ ताय रे।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥

(२)

सुन मन मूढ़ ! सिखावन मेरो।
हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझ सवेरो ॥
बिछुरे ससि रवि, मन-नयननि ते, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति संदेह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहि राम कर चेरो ॥

किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि, दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि ।
निलजता परि रीझि रघुबर, देहु तुलसिहि छोरि ॥

(६)

है प्रभु मेरोई सब दोसु ।
सील-सिंधु, कृपालु, नाथ अनाथ-आरत-पोसु ॥
वेष बचन बिराग मन अघ अवगुननि को कोसु ।
राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट करतब ठोसु ॥
राग-रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु ।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ।
संभु-सिखवन रसनहूँ नित राम नामहिं घोसु ।
दमहुँ कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।
राम-नाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम सतोसु ॥

(१०)

मैं हरि, पतित-पावन सुने ।
मैं पतित तुम पतित-पावन, दोउ बानक बने ॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ?
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो, राखिए अपने ॥

(११)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि, पथ रहि अबिचल हरि-भक्ति लहौंगो ॥

(१२)

लाज न आवत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ॥
सकल संग तजि भजत जाहि, मुनि जप तप जाग बनावत ।
मो सम मंद महाखल पाँवर, कौन जतन तेहि पावत ?
हरि निरमल, मल-ग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥
जाकी सरन जाइ कोबिद दारुन त्रयताप बुझावत ।
तहूँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति न सावत ॥
भव-सरिता कहँ नाउँ संत यह कहि औरनि समुझावत ।
हौं तिनसों करि परम बैर हरि, तुम सों भलो मनावत ॥
नाहिन और ठौर मो कहँ, तातें हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार-चूड़ामनि ! तुलसिदास गुन गावत ॥

(१३)

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे ।
नाहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ॥
बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे ॥

काहि ममता दीन पर, को पतित पावन नाम ।
पापमूल अजामिलहि केहि दियो आपनो धाम ।।
रहे संभु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।
सोक-सरि बूड़त करीसहि दई काहु न टेक ।
बिपुल भूपति-सदसि महँ नर नारि कह्यो 'प्रभु पाहि' ।
सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि ।।
एक मुख क्यों कहौं करुनासिन्धु के गुन-गाथ ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ।।
आपसे कहुँ सौंपिए मोहि जो पै अतिहि घिनात ।८
दास तुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ।।

(१६)

काहे न रसना रामहि गावहि !
निसि दिन पर-अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ।।
नरमुख सुन्दर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि ।।
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि सुनत स्रवन दै भावहि ।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन कलंक नसावहि ।।
जातरूप-मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि ।
सरन-सुखद रबिकुल-सरोज-रबि राम नृपहि पहिरावहि ।।
बाद बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि ।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ।।

(२०)

यहि ते मैं हरि ! ग्यान गँवायो ।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत बिकल भयो धायो ।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो ।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगन्ध कहाँ तें आयो ।
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो ।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ।।

जारत त्रिबिध ताप तनु दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो ।
अपनेहिं धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो ॥
तुम सम ग्यान निधान, मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो ।
तुलसिदास प्रभु यहि बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥

(२१)

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस, बृथहिं मंदमति बारि बिलोयो ।
करम कीच जिय जानि सानि नित चाहत कुटिल मलहिं मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो ।
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो ॥

(२२)

राम रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर हनुमान लखन भरत ।
जिन्हके हिये-सुथल राम-प्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥
आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ भाइ पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत ।
साहिब सेवक-रीति प्रीति-परिमिति नीति,
नेम को निबाह एक टेक न टरत ॥

सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं,
राम की भगति बड़ी बिरति-निरत ।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ ! पगनि परत ॥

काहि ममता दीन पर, को पतित पावन नाम।
पापमूल अजामिलहि केहि दियो अापनो धाम॥
रहे सम्भु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक।
सोक-सरि बूड़त करीसहि दई काहु न टेक॥
बिपुल भूपति-सदसि महँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि'।
सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि॥
एक मुख क्यों कहौं करुनासिन्धु के गुन-गाथ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ॥
अापसे कहुँ सौंपिए मोहि जो पै अतिहि घिनात
दास तुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात

(१६)

काहे न रसना रामहि गावहि?
निसि दिन पर-अपवाद बृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि।
नरमुख सुन्दर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रविकर-जल कहँ धावहि।
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि सुनत स्रवन दै भावहि।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन कलंक नसावहि॥
जातरूप-मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि।
सरन-सुखद रविकुल-सरोज-रवि राम नृपहि पहिरावहि॥
बाद बिवाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि॥

(२०)

याहि तें मैं हरि ! ग्यान गँवायो।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत बिकल भयो धायो।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगन्ध कहाँ तें आयो।
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो॥

ब्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहिं धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो॥
तुम सम ग्यान निधान, मोहिं सम मूढ़ न आन पुराननि गायो।
तुलसिदास प्रभु यहि बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो॥

(२१)

मैं मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस, बृथहिं मंदमति बारि बिलोयो।
करम कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मनहिं मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो।
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो॥

(२२)

राम रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर हनुमान लखन भरत।
जिन्हके हिये-सुथल राम-प्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत॥
आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ भाइ पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत।
साहिब सेवक-रीति प्रीति-परमिति नीति,
नेम को निबाह एक टेक न टरत।
सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं,
राम की भगति बड़ी बिरति-निरत।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ! पगनि परत।

षट्-मत बिमत, न पुरान मत, एक मत,
नेति नेति नेति नित निगम करत।
औरनि की कहा चली ? एकै बात भलै भली,
राम-नाम लिए तुलसी हूँ से तरत ॥

(२३)

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम ! रस न रहत
तुमसे सुसाहिब की ओट जन खोट खरो,
काल की करम की कुसाँसति सहत
करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ ते लहत ?
नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर,
हेरि हारि कै हहरि हृदय दहत ।
सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु आप
माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत ।
मेरी तौ थोरी ही है, सुधरैगी बिगरियो,
बलि, राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥

(२४)

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौं, बलि बेद की न, लोक कहा कहैगो।
प्रभु को उदास-भाव जन को पाप-प्रभाव,
दुहूँ भाँति दीनबन्धु ! दीन दुख दहैगो ॥
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि,
साँसति सहत परबस को न सहैगो !
बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु,
अन्त मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो ॥
करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत,
आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो ?

तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर,
लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो
काल पाय फिरत दशा दयालु, सब ही की,
तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो।
बचन, करम, हिये, कहौं राम! सौंह किए,
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो॥

(२५)

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता॥
दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता।
नाथ गुनगाथ गाये हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता॥
एही दरबार है गरब तें सरब-हानि,
लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता॥
मोटो दसकंध सो न, दूबरो बिभीषन सो,
बूझि परी रावरे की प्रेम-परावीनता॥
यहाँ को सयानप अयानप सहस सम,
सूधौ सतभाय कहे मिटति मलीनता।
गीध-सिला, सबरी की सुधि सब दिन किए,
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता॥
करुनानिधान! बरदान तुलसी चहत,
सीतापति - भक्ति - सुरसरि-नीर - मीनता॥

(२६)

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूर परयो हौं।
तुम चहुँ जुग रस एक राम हौं हूँ रावरो
जदपि अघ अवगुननि भरयो हौं।
बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृपतें भिखारि करि,
सुमति तें कुमति करयो हौं।
अगनित गिरि कानन फिरयो, बिनु आगि जरयो हौं।
चित्रकूट गए हौं लखि कलि की कुचालि सब,
अब अपडरनि डरयो हौं॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खरयो हौं।
चीन्हो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि,
प्रभु सों गुदरि निबरयो हौं॥

(२७)

पन करि हौं हठि आज ते राम-द्वार परयो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठि हौं न जनम भरि,
प्रभु की सौं करि निबरयो हौं॥
दै दै धका जमभट थके, टारे न टरयो हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि,
जग नरक निदरि निकरयो हौं॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अरयो हौं।
तुम दयालु बनि है दिए बलि, बिलम्ब न कीजिए,
जात गलानि गरयो हौं॥
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध-भरयो हौं।
तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि,
कलि बिलोकि हहरयो हौं॥

(३८)

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो, तेहि सहज
नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहुँ बिधि चातक
ज्यों एक टेक ते नहिं टरिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि-लाभ दुख-सुख सबै समचित हित
अनहित कलि-कुचालि परिहरिहै॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम, लखि
आनन्द उमगि उर भरिहै॥

(३९)

गुन बनि मन मैलो करो, कोमल बनि फेरो।
सुनहु राम, बिनु रावरे लोकहु परलोकहु
कोउ न कहूँ हितु मेरो॥
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक,
औचट उलटि न हेरो॥
भगति हीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल-घेरो।
देवनि हूँ देव परिहर्‌यो, अन्याव
न तिनको, हौं अपराधी सब केरो॥
नाम की ओट लै पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात ह्वै परी समुझिये धौं आपने,
लोक कि बेद बड़ेरो॥

ह्वै हैं जब तब तुम्हहि तें तुलसी को भलेरो।
देव ! दिनहूँ दिन बिगरिहैं बलि बलि जाउँ,
बिलम्ब किये अपनाइए सबेरो॥

(३०)

तुम तजि हो कासों कहौं, और को हितु मेरे ?
दीनबन्धु ! सेवक-सखा आरत अनाथ पर
सहज छोहु केहि केरे॥
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु बेरे।
कृपा, काय, सतिभायहू धोखे हू,
तिरछेहू राम तिहारेहि हेरे॥
जो चितवनि सौंधी लगै चितइए सवेरे।
तुलसिदास अपनाये कीजै न ढील,
अब जीवन अवधि अति नेरे॥

(३१)

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित दीन को ?
को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत
सब अंग बलबिहीन को ?
गनिहिं गुनिहि साहिब लहै सेवा समीचीन को।
अधन, अगुन, आलसिन को पालिबो फबि
आयो रघुनायक नबीन को॥
मुख के कहा कहौं ? बिदित है जी की प्रभु प्रबीन को।
तिहूँ काल, तिहूँ लोक में, एक टेक रावरी
तुलसी से मन मलीन को॥

(३२)

द्वार द्वार दीनता कही काढि रद, परि पाहूँ।
है दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम,
कियो न सम्भाषन काहूँ॥

तनु-जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यों मातु-पिता हूँ।
काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग
मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥
दुखित देख संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न,
सरन गए रघुबर और निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिना हूँ।
नाम की महिमा सील नाथ को मेरो भलो,
बिलोकि अबतें सकुचाहुँ सिहाहुँ ॥

(३३)

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम रावरे बिन भए जन जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो ?
आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुँह बायो ॥
असन बसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा मान प्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु-खिनु पेट खलायो ॥
नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थल पतितायो।
मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ॥
दसरथ से समरथ तुही त्रिभुवन जस गायो।
तुलसी नमत अवलोकिए बलि बाँह-बोल दै बिरदावली बुलायो ॥

(३४)

राम राय बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?
स्वामि सहित सब सों कहौं सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥
देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किये विचारसार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीचबिच काँचो ॥

"विनय पत्रिका" दीन की बापु ! आपु ही बाँचो ।
हिँय हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिए पाँचो ॥

(३५)

पवन सुत, रिपु-दवन, भरत लाल, लखन दीन की ।
निज-निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजिहै खास खीन की
राजद्वार भली सब कहै साधु समीचीन की ।
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ गति भए गति-बिहीन की
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की ।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल, कृपालुहि परमिति पराधीन की ।

(३६)

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है ।
कलिकालहुँ नाथ ! नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है ।
कृपा गरीब-निवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है ॥
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है सुधि मैं हूँ लही है' ।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है ॥

❀ अन्तर्कथाएँ ❀

पार्वती-मंगल

पृष्ठ संख्या १

छन्द सं० २ : चार फल = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ससिसेखर = शशिशेखर = शिव।

पृष्ठ संख्या २

छन्द संख्या ८ : पारस = पारस पत्थर। कहते हैं कि इस पत्थर के स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है।

छन्द संख्या १५ : कहते हैं एक बार तारकासुर नामक राक्षस ने अपनी भुजाओं के बल और प्रताप से सब लोकों और लोकपालों को जीत लिया था और देवता सुख-सम्पत्ति से विहीन हो गए थे। वह न बूढ़ा होता था, न मरता था, इसीलिए जीता नहीं जा सकता था। जब देवता भाँति-भाँति के युद्ध करके हार गए, तब वे ब्रह्मा जी के पास जाकर पुकारे। ब्रह्माजी ने देखा कि सब देवता बहुत ही दुःखी हैं। तब उन्होंने सब देवताओं को समझाते हुए कहा कि इस दैत्य का नाश तब होगा जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न होगा। वही इसको लड़ाई में जीत सकेगा।

मेरी बात मानकर उपाय करो। हिमाचल के घर में पार्वती का जन्म हुआ है। उसने शिवजी को पति बनाने के लिए तप किया है और शिवजी सब छोड़ छाड़ कर समाधि लगाए बैठे हैं। यदि उनकी समाधि भंग की जा सके, तो काम बनने की सम्भावना है। यद्यपि यह कार्य कठिन है, तथापि एक उपाय करो।

तुम लोग कामदेव को शिवजी के पास भेजो। वह शिवजी के मन को चलायमान करे। उनके मन में विकार उत्पन्न करे। तब हम शिवजी के पास जाकर और सिर नवा कर उन्हें विवाह के लिए तैयार कर लेंगे।

देवताओं ने कामदेव से अपनी सब विपत्ति कही और अपने आने का

प्रयोजन बताया। देवताओं की वाणी सुनकर कामदेव ने सोचा कि शिवजी का विरोध करके उसका कुछ भी भला नहीं होगा, परन्तु फिर भी परोपकार के महत्व को समझकर वह यह काम करने को तैयार हो गया।

सबको नमस्कार करके कामदेव कैलाश पर्वत की ओर चला। शिवजी समाधि लगाए वहीं तो बैठे थे। उसके हाथ में फूलों का धनुष था। कहते हैं कि कामदेव के बाण पाँच फूलों के होते हैं—कमल, अशोक, आम, चमेली और नीलकमल। उसके साथ वसंत ऋतु भी थी।

कैलाश पर्वत पर पहुँचकर उसने अपना प्रभाव फैलाया और शिवजी की समाधि भंग करने का पूरा पूरा प्रयत्न करने लगा।

बहुत प्रयत्न करने के बाद कामदेव अपने उद्देश्य में सफल हुआ। शिवजी का चित्त डाँवाडोल हुआ और उनकी समाधि छूट गई। शिवजी ने कामदेव को देखा और वह क्रोधित हो उठे। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र (अग्नि का अथवा ज्ञान का) खोला और कामदेव जलकर राख हो गया। तभी से शिवजी को कामारि अथवा 'काम-मद-मोचन' कहते हैं। शिवजी के ऊपर काम-भावना का कोई प्रभाव नहीं है।

पृष्ठ सं० ४

छन्द सं० २८ : पार्वती तप = पार्वती ने शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने के लिए बड़ा ही कठोर तप किया था। उन्हें अपनी देह की सुध-बुध जाती रही थी। पार्वती ने एक हजार वर्ष मूल-फल खाए और सौ वर्ष केवल साग-पात खाकर बिताए। थोड़े दिन जल और पवन को ही खाकर रहीं। फिर कुछ दिन कठिन व्रत किए। और तीन हजार वर्ष तक धरती पर गिरे हुए सूखे बेलपत्र खाए। फिर सूखे पत्तों (पर्णों) का खाना भी छोड़ दिया। (इसी कारण पार्वती अथवा उमा को अपर्णा भी कहते हैं।)

फलस्वरूप पार्वती का शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि, "हे पार्वती! तुम कष्ट सहना छोड़ो, तुम्हें शिवजी अवश्य मिलेंगे। तुम्हारा तप अपूर्व और धन्य है। आज तक इस संसार में अनगिनती पण्डित, मुनि और ज्ञानी हो गए हैं, परन्तु ऐसा तप तो किसी ने भी नहीं किया।"

इसके बाद सप्त ऋषि (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वशिष्ठ) पार्वती के पास पहुँचे। उन्होंने शिवजी को उदासीन, गुन-रहित, लाजरहित, बुरे भेष वाला, कपालयुक्त, बिना घर-बार वाला, नंगा, भिखारी, सांप लपेटे रहने वाला आदि बुरे लक्षणों से युक्त बताया। परन्तु पार्वती तनिक भी नहीं डिगीं। उन्होंने यही कहा कि "जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम" तथा "जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरौं संभु नतु रहौं कुआरी।"

यह है पार्वती के कठोर तप की संक्षेप में कहानी।

जानकी-मंगल

पृष्ठ सं० ६

छन्द सं० २० : पन = प्रण—जनक राजा का यह प्रण था कि जो कोई शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ देगा उसको सीता बिना विचारे ही पति रूप में वरण कर लेगी अथवा जो धनुष तोड़ेगा राजा उसी को अपनी प्यारी पुत्री सीता को समर्पित कर देंगे।

पृष्ठ सं० ८

छन्द सं० ३५ : त्रिभुवन = तीनों लोक = स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल।

छन्द सं० ४२ : तीनि काल = भूत, भविष्य और वर्तमान।

छन्द संख्या ४३ : सुबाहु-सूदन-जसु = सुबाहु को मारने का यश। सूदन का अर्थ होता है 'वध'।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए राम ने सुबाहु नाम के भयंकर राक्षस का वध किया था। उसके भाई मारीच को बिना फर के बाण द्वारा सौ योजन दूर फेंक दिया था।

छन्द सं० ५४ : विदेह-पन = विदेह का प्रण = राजा जनक के द्वारा किया गया प्रण—देखें ऊपर छन्द सं० २०।

छन्द सं० ५५ : नृप नहुष = प्राचीन चन्द्रवंशी राजा जिसको अगस्त्य ऋषि के शापवश सर्पयोनि धारण करनी पड़ी थी।

नहुष प्रतिष्ठानपुर का राजा था। वह बड़ा ज्ञानी और धर्मात्मा था। एक बार इन्द्र वृत्रासुर राक्षस के डर से भागकर मानसरोवर में जा छिपे।

ष्ठ सं० १३

छन्द स० ११ : सुग्रीव और बालि दो वानर भाई थे। बालि अतिशय लवान था। उसने सुग्रीव को मारकर घर से निकाल दिया, और उसकी पत्नी भी छीन ली थी। राम-लक्ष्मण सीता की खोज में जब भटक रहे थे, उस समय सुग्रीव ने हनुमानजी को यह देखने भेजा था कि वे कौन थे। यहीं सुग्रीव राम का भक्त हो गया और उसने अपनी समस्त करुण कथा प्रभु को सुनाई। राम ने बालि का वध करके सुग्रीव को राजा बनाया।

छन्द स० १३ : *सो संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ*—कहते हैं शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण ने अपने सिर काट कर उनके अर्पित किए थे।

जिन दिनों भगवान राम लंका पर चढ़ाई करने के लिए सागर-तीर डेरा डाले पड़े थे, उसी समय रावण द्वारा अपमानित होकर उसका छोटा भाई विभीषण राम की शरण में गया था। विभीषण राम का भक्त था। वह रावण से बार-बार राम के भगवान होने की बात कहता था और निवेदन करता था कि वह सीता को लौटा दे। इसी बात पर क्रुद्ध होकर रावण ने विभीषण के सिर में लात मारी थी और अनेक कटु वचन कह कर अपमानित किया था।

जैसे ही विभीषण राम की शरण में पहुँचा, वैसे ही राम ने तिलक करके उसको लंका का राजा घोषित कर दिया। फिर भी राम के मन में यह विचार बना रहता था कि उन्होंने विभीषण को कुछ नहीं दिया। रावण अपने १० सिरों की बलि देकर लंका का अधिपति बना था। राम की कृपाशीलता तो देखिए; वही राज्य उन्होंने विभीषण को यों ही सहज प्रदान कर दिया।

पृष्ठ स० १४

छन्द सं० २५ : राजा दशरथ को जब सुमन्त द्वारा यह समाचार मिला कि राम तो वन को गए, लौटाने से लौटे नहीं, तो विरहाकुल होकर उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए थे।

छन्द सं० २६ : गीधराज से तात्पर्य जटायु से है। रावण सीता को बल-पूर्वक हर कर आकाशमार्ग से ले जा रहा था। सीता विलख रही थीं। उनकी पुकार सुनकर जटायु रावण पर झपटा और बहुत देर तक रावण के

साथ युद्ध करता रहा। अन्त में रावण द्वारा बुरी तरह घायल कर दिया गया वह मरणासन्न अवस्था में था, उसी समय सीता को खोजते हुए राम औ लक्ष्मण उधर से निकले। जटायु से उन्होंने बात की। जटायु ने उनको बताय कि रावण सीता को लेकर किस ओर गया था। बस, फिर उसने प्राण त दिये। राम ने स्वयं अपने हाथों उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया। राम-का करते हुए उसके प्राण गए तथा राम के हाथ की अग्नि उसने प्राप्त की। सचमुच जटायु से अधिक भाग्यवान् और कौन हो सकता है।

छन्द सं० २७ . देखें ऊपर छन्द संख्या २६।

छन्द सं० २८ . वही।

छन्द सं० ३५ : सेमल का फल अथवा उसकी फली बहुत ही आकर्षक होती है। कहते हैं कि तोता उसके पास बार-बार जाता है, इस लोभ से कि जब वह पक जाएगी, तब वह उसको स्वादपूर्वक खाएगा। परन्तु पकते ही वह फल चटक जाता है—उसमें से रुई निकल पड़ती है और तोता को निराश होकर लौट जाना पड़ता है। कबीरदास ने इसी बात को अधिक स्पष्ट करके कहा है—'ढेंढी फूट चटाक दे सुअना चला निराश।'

यद्यपि तोता बार-बार यह अनुभव करता है कि सेमल के फल में गूदा नहीं होता है तथापि वसन्त ऋतु आते ही वह उस पर मँडराने लगता है।

छन्द सं० ४० : काठ में घुन लगजाता है। दैवयोग से कभी उसमें कोई अक्षर भी बन जाता है। इसी को घुणाक्षर न्याय कहते हैं।

छन्द संख्या ४१ : से लेकर छन्द संख्या ७१ तक . चातक के प्रेम क वर्णन है। कहते हैं कि चातक केवल स्वाँति नक्षत्र में बरसने वाले पानी की दो बूँद पीता है—अन्यथा प्यासा ही बना रहता है। यदि स्वाँति नक्षत्र में पानी नहीं बरसता है, तो वह अन्य जल ग्रहण नहीं करता है। तुलसीदासजी बादल के प्रति उसके प्रेम को आदर्श प्रेम मानते हैं। भगवान के प्रति भक्त की भी यही अनन्यता अपेक्षित है।

पृष्ठ सं० १७

छन्द सं० ७२ : कंचन मृग को मारने के लिए राम बहेलिया बने थे। यहाँ उसी ओर संकेत है।

छन्द संख्या ७५ : चार पदारथ = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

पृष्ठ सं० १८

छन्द स० ८० : सूर्य और चन्द्रमा अपने सुनिश्चित मार्ग पर चलते चले जाते हैं। इनके चलने का मार्ग अथवा वृत्त निश्चित है। वे उसी पर चलते हैं। अन्य ग्रहों के बारे में यह धारणा है कि ये टेढ़े सीधे चलते हैं। उनके मार्ग का पता ही नहीं चल पाता है।

छन्द स० ८१ :

मेंढक की कथा—एक बार एक सर्प दुःखी होकर एक कुँए में पहुँचा। वहाँ गगादत्त नामक मेंढ़क रहता था। मेंढ़क ने उसको आश्रय दिया—रहने के लिए एक स्थान बता दिया। वह प्रतिदिन सर्प को एक मेंढ़क भी खाने को दे देता था। धीरे-धीरे सब मेंढ़क समाप्त हो गए। अन्त में सर्प ने गगादत्त के पुत्र को भी खा लिया। गगादत्त ने सर्प से कहा भी कि भाई मैंने तो तुम्हारे साथ उपकार किया है, मेरे परिवार को तो हाथ मत लगाओ, परन्तु सर्प ने एक नहीं मानी। अन्ततोगत्वा गगादत्त एक दिन मौका पाकर तथा और मेंढ़कों को बुला लाने का बहाना करके वहाँ से भाग गया।

मर्कट की कथा—एक राजा के यहाँ बन्दर पालतू था। राजा की नाक पर मक्खी बैठती थी। मक्खी हटाने के लिए बन्दर ने तलवार से राजा की नाक काट डाली।

वनिक की कथा—समुद्र ने एक ब्राह्मण को एक ऐसा शंख दिया, जो उसको प्रतिदिन एक मोहर दिया करता था। एक बनिक ने बातें बना कर ब्राह्मण को अपने घर में टिका लिया, उसकी बहुत आव-भगत की, और अवसर पाकर इसके शंख को चुरा लिया तथा इसके स्थान पर एक अन्य साधारण शंख रख दिया था।

बक (बगुला) —एक बार एक [illegible] बन कर एक तालाब के किनारे जा [illegible] में

कि आप इतने सुस्त और [illegible]

वैराग्य ले लिया है। परन्तु एक

छन्द संख्या ६६ : बालि और रावण दोनों की मृत्यु भाई के कारण हुई। बालि ने अपने छोटे भाई सुग्रीव को घर से निकाल दिया था। उसने राम की शरण ली और राम ने बालि का वध किया।

रावण ने अपने छोटे भाई विभीषण को घर से निकाला। विभीषण ने राम की शरण ली और राम ने रावण का कुल सहित हनन किया।

पृष्ठ संख्या २०

छन्द संख्या १०६ : हनुमान एक छलांग में सागर को पार कर गए थे। उसी सागर को पार करने के लिए राम को सेतुबन्ध रामेश्वर पर समुद्र का पुल बनाना पड़ा था।

❀ बरवै रामायण ❀

अरण्यकाण्ड

पृष्ठ संख्या २३

छन्द संख्या २५ : वेद = श्रुति = कान। अकाम = नाक। आकाश को नाक भी कहते हैं।

❀ रामचरित-मानस ❀

बालकाण्ड

पृष्ठ संख्या २५

दोहा : गिरा अर्थ ... ...भिन्न। भाव यह ...
...न और उसकी तरंगें अलग—पृथक्, जुदी नहीं ...न
...सीता जुदे नहीं हैं। यहाँ एक बार तो पहले "गिरा"
...पुल्लिंग का, दूसरी बार पहले "जल" पुल्लिंग का फिर ... का
...योग करके यह सूचित किया कि राम सीता या सीता ... भी
...भेद नहीं है। ...

महिमा जासु जान गनराऊ = ... है
...कि पहले गणेशजी ऐश्वर्य पाकर बावले
...नाश करने लगे तथा इस प्रकार बहुत
...अपने पुत्र का वध यह अवाञ्छनीय

हुए। उसके निवारण के लिए उन्होंने अपने इष्टदेव भगवान राम का ध्यान किया। निदान भगवान राम प्रकट हुए। शिवजी ने अपने पुत्र के समस्त अवगुण और दोष उनकी सेवा में निवेदन किए और विनती की कि वह कोई ऐसा उपाय करें जिससे मेरे पुत्र की निन्दा न हो। भगवान राम ने प्रसन्न होकर कहा कि कुछ दिनों तक राम-नाम का जप करने से गणेश जी सब प्रकार योग्य हो जायेंगे। भगवान के वचन सुनकर शिवजी ने गणेश को राम-नाम का जप करने की आज्ञा दी। गणेशजी ने समाधि लगाकर राम-नाम का जपना आरम्भ कर दिया और सहस्र वर्ष तक ऐसा करते रहे। उस जप के प्रभाव से गणेश जी प्रथम पूजने योग्य हुए।

नोट—आप सब जानते होंगे कि प्रत्येक मंगल-कार्य में सर्व प्रथम गणेश-पूजन ही होता है।

मयउ शुद्ध करि उलटा जापू—कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकि पहले डाकू थे। एक बार उन्होंने नारदजी को पकड़ लिया। नारदजी ने उनसे कहा कि तुम घरवालों से यह पूछ कर आओ कि वे तुम्हारे पापों को भोगने को तैयार हैं या नहीं। घरवालों ने जब मना कर दिया, तब उन्हें बहुत निराशा हुई। उसी समय नारदजी ने उन्हें राम-नाम का मन्त्र दिया। कहते हैं कि उस डाकू को 'राम-राम' की जगह 'मरा-मरा' याद रह गया। वह निरन्तर 'मरा-मरा' को ही जपने लगा। इस तप में वह इतना लीन हो गया कि उसके शरीर के ऊपर मिट्टी का टीला जम गया, उस पर घास उग आई, इत्यादि। उनके तप से प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें दर्शन दिये और वह महर्षि वाल्मीकि जैसे महापुरुष बन गये।

सहसनाम सम सुनि शिव बानी—एक दिन शिवजी भोजन करने को बैठे। उस समय उन्होंने पार्वती से अपने साथ भोजन करने को कहा। पार्वती ने उत्तर दिया कि एक अभी उन्होंने विष्णुसहस्र नाम का पाठ नहीं किया अतः भोजन नहीं कर सकती थीं। शिवजी ने उनको समझाया कि वह राम का नाम केवल एक बार ले लें—वह विष्णु के हजार नाम लेने के समान ही फलदायक होगा—"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्र नाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने। अर्थात् हे सुन्दरमुखी, राम का नाम एक बार लेना विष्णु के हजार नाम के बराबर है।"

यह सुनकर पार्वती जी ने राम का नाम लिया और शिवजी के साथ भोजन करने लगीं। शिवजी ने उन्हें अपने वचन पर आरूढ़ देखकर बड़ी प्रीति से अपने अर्द्धाङ्ग में स्थान दिया।

नाम प्रभाउ कालकूट ''' '' फल दीन्ह अमी के। जब विष्णु भगवान ने कच्छावतार लेकर समुद्र को मथा तब उसमें १४ रत्न निकले थे। यथा—

श्री, रम्भा, विष, वारुणी, अमिय, शंख, गजराज,
धन्वतरि, धन, धेनु, तरु, मणि, शशि, बाज।

अन्य रत्नों को तो देवताओं ने बाँट लिया, परन्तु जब विष प्रकट हुआ तो इसकी ज्वाला की गर्मी से सब घबड़ा गये और हाहाकार करने लगे। वे पुकार कर कहने लगे कि—हे शिव, हम भस्म हुए जाते हैं, हमारी रक्षा करो। निदान, शिवजी ने उन देवताओं के ऊपर तरस खाया और राम का नाम लेकर उस विष को पी लिया। राम कृपा से कण्ठ में पहुँचते ही वह अमृत हो गया था।

नर नारायण—ये दो ऋषि थे जो परमेश्वर का अवतार माने जाते थे।

पृष्ठ संख्या २६

सिद्धि अणिमादिक—सिद्धियाँ आठ मानी गई हैं। यथा—(१) अणिमा (छोटा रूप धरना), (२) महिमा (बड़ा रूप रखना), (३) गरिमा (भारी हो जाना), (४) लघिमा (हलका हो जाना), (५) प्राप्ति (चाहे जहाँ चले जाना), (६) प्राकाम्य (मन चाही वस्तु प्राप्त कर लेना), (७) ईशित्व (प्रभुता होना) और (८) वशित्व (जिसको चाहे वश में कर लेना)।

राम भक्त जग चारि प्रकारा। भक्त चार प्रकार के होते हैं—(१) आर्त्त, (२) जिज्ञासु, (३) अर्थार्थी, तथा (४) ज्ञानी। प्रथम तीन की भक्ति किसी कामना से होती है परन्तु ज्ञानी की भक्ति निष्काम होती है। इसी कारण प्रभु को ज्ञानी विशेष प्रिय होता है अथवा इसी कारण ज्ञानी को सबसे अच्छा समझा गया है।

आर्त्त = दु:खी—यह अपने दु:ख के निवारण के लिए भक्ति करता है। जिज्ञासु = जानने की इच्छा करने वाला। यह कुछ जानने के लिए भक्ति करता

है। अर्थार्थी = यह कुल प्राप्ति के लिए, धनादि के लिए, भक्ति करता है।

महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय संख्या ३४१ में भगवान ने बिल्कुल यही बात कही है कि मैंने सुना है कि मेरे भक्त चार प्रकार के होते हैं। इनमें से जो अन्य देवताओं की आराधना न करके केवल मुझमें ही ही निष्ठावान् हैं वे ही श्रेष्ठ हैं। उन निष्काम कार्य करने वाले भक्तों को मेरा ही सहारा है। इनके अतिरिक्त जो तीन प्रकार के भक्त हैं वे फल की कामना करते हैं; इस कारण धर्मच्युत हैं। केवल ज्ञानी ही श्रेष्ठ है।

पृष्ठ संख्या २७

तापस तिय नारी = तापस तिय का अर्थ है अहिल्या।

इन्द्र ने अहिल्या का पातिव्रत नष्ट किया था। फलस्वरूप अहिल्या के पति गौतम ऋषि ने उसको शाप दिया था कि तू पत्थर की होजा। त्रेता युग में रामावतार होगा। उनके चरणों की रज का स्पर्श प्राप्त कर तेरा उद्धार होगा।

महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के पश्चात् राम और लक्ष्मण महर्षि के साथ जनकपुर गये थे। मार्ग में वह आश्रम पड़ा था, जहाँ अहिल्या पत्थर का शरीर धारण किए पड़ी थी। मुनि ने राम से कहा कि—

गौतम नारी शापवश उपल-देह धर-धीर।
चरण-कमल-रज चाहती कृपा करउ रघुवीर॥

भगवान ने शिला से चरण लगाए और अहिल्या प्रकट हुई। प्रभु की बार-बार विनती करके वह आनन्द से परिपूरित हो पतिलोक को प्राप्त हुई।

सुकेतु सुता = सुकेतु राक्षस की पुत्री = ताड़का। शबरी = शबरी भीलनी। इसने भगवान राम को अपने जूठे बेर खिलाये थे। उसने जब सुना कि भगवान राम इधर वन में आने वाले हैं, तो उसने उनको खिलाने के लिए बेर इकट्ठे किए। उसने यह विचार किया कि केवल मीठे बेर ही राम को दिये जायँ। फलतः उसने प्रत्येक बेर को चख कर देखा। खट्टे-खट्टे बेर उसने फेंक दिये तथा मीठे-मीठे बेर एकत्र कर लिए और जब राम मिले तो वे बेर उन्हें अर्पण कर दिए। राम ने उसका प्रेम देखा और उसको अपना लोक प्रदान किया।

गीध = गिद्धराज जटायु। भगवान राम ने स्वयं अपने हाथों इसका अन्तिम संस्कार किया था।

भक्त शिरोमणि भे प्रह्लादू—हिरण्यकश्यप की स्त्री गर्भवती थी। एक दिन नारदजी ने आकर उसको उपदेश दिया। उसको ज्ञान नहीं हुआ, परन्तु उसके गर्भस्थ बालक को ज्ञान हो गया। यही बालक प्रह्लाद के रूप में जन्मा। उसके लिए भगवान विष्णु ने नृसिंह रूप में अवतार धारण किया और दैत्य कुल का नाश कर, हिरण्यकश्यप का वध करके, प्रह्लाद को राज्य सौंपा।

ध्रुव सगलानि जप्यो हरिनामू—स्वायभू मनु और शतरूपा के पुत्र राजा उत्तानुपाद हुए। इनकी दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी से ध्रुव हुए। राजा छोटी रानी को अधिक प्यार करते थे। एक दिन राजा अपनी छोटी रानी के पास बैठे हुए थे, उसी समय ध्रुव आकर अपने पिता की गोद में बैठ गये। छोटी रानी ने ध्रुव को खींचकर राजा की गोद से उतार दिया और कहा कि तू यदि मेरी कोख से जन्म लेता तो इस गोद का अधिकारी बन सकता था। यह बात ध्रुव को लग गई, उन्हें बड़ी आत्मग्लानि हुई। उन्होंने वन में जाकर तप करने के लिए अपनी माता से आज्ञा प्राप्त की। वह जब वन को जाने लगे तो राजा ने उनको बहुत समझाया पर वह न माने—यहाँ तक कि राजा ने ध्रुव को अपना राज्य देने की बात भी कही। अन्त में नारद के उपदेश से ध्रुव ने कठोर तपस्या की और भगवान के दर्शन कर वह अचल लोक के स्वामी हुए।

चहुँ युग = चार युग—(१) सत युग, (२) द्वापर, (३) त्रेता तथा (४) कलियुग।

पृष्ठ संख्या २८

सोइ करतूति = भाई की पत्नी को रख लेना। सुग्रीव ने बालि की स्त्री तारा को और विभीषण ने मन्दोदरी को घर में रख लिया था।

पृष्ठ संख्या २६

शूकर-खेत = सूकर-क्षेत्र। आशय वाराह क्षेत्र से है जो सरयू के किनारे अयोध्या के पास है।

रामजन्मोत्सव और बालक्रीड़ाएँ

पृष्ठ संख्या ३०

नाँदी मुख श्राद्ध—पितरों के लिए श्रद्धा से जो कुछ दिया जाय उसे श्राद्ध कहते हैं। शुभ-कार्य में जो श्राद्ध किया जाता है उसको नान्दी मुख श्राद्ध कहते हैं।

जातकर्म—यह संस्कार बालक के जन्म-समय किया जाता है। इसकी विधि यह है कि पहले पिता स्नान-पूजन करके चावल और जौ के चूर्ण को बालक की जीभ पर मलता है और फिर घी मलता है। तब नाल काटने और दूध पिलाने की आज्ञा देता है।

पृष्ठ सं० ३२

लक्ष्मण नाम उदार—यहाँ यह शंका उठ सकती है कि शत्रुघ्न के बाद लक्ष्मण का नामकरण क्यों किया गया। इसका समाधान "लक्ष्मण-धाम" में है। इसका तात्पर्य यह है कि तीनों भाइयों के गुण लक्ष्मण में विद्यमान थे। यथा—राम का सब लोकों को विश्राम देना, भरत का संसार का पालन करना और शत्रुघ्न का शत्रुओं का नाश करना—इन तीनों गुणों का लक्ष्मण में होना सूचित किया गया है।

रामकथा का प्रस्तावना

पृष्ठ सं० ३३

नररूप हरि = गोस्वामीजी के जीवन-चरित्र से पता चलता है कि उनके गुरु का नाम नरसिंहदास था। इस कारण उन्होंने नर-रूप-हरि पद से अपने गुरुदेव की वन्दना की है, क्योंकि 'हरि' का अर्थ 'सिंह' भी होता है।

पृष्ठ सं० ३४

वाल्मीकि नारद घटयोनी ""। वाल्मीकिजी ने राम से कहा कि मैं पहले बहेलिया था। एक बार मैंने कई ऋषियों (नारद भी थे) को लूटना चाहा तब उन्होंने मुझसे पूछा कि तू जो पाप करके कुटुम्ब पालता है सो तेरा कुनबा क्या

तेरे पापके फल का भी साथी है। यह सुन मैंने कुटुम्बियों से पूछा तब उन्होंने कहा कि हम पाप के साथी नहीं हैं। फिर मैंने सबको छोड़ नारद से धर्म सुना और आपका उलटा नाम (मरा-मरा) जपते इस गति को प्राप्त हुआ कि आपके घर बैठे दर्शन प्राप्त हुए।

नारदजी ने व्यासजी से कहा कि मैं एक दासी के पेट से उत्पन्न हुआ था। मेरी माता एक साधु की टहल किया करती थी। वहाँ मैं भी उसके साथ चला जाया करता था और साधुओं की जूठन खा लिया करता था। उससे मेरी बुद्धि ऐसी शुद्ध हो गई कि माता के देहावसान के बाद मैं एकान्त में जाकर तप करने लगा। अन्त में मरकर मैंने ब्रह्माजी के यहाँ जन्म लिया।

अगस्त्य मुनि ने शिवजी से कहा कि मेरे पिता ने तप करते में रंभा को देख घट में अपना वीर्य डाल दिया जिससे मैं उत्पन्न हुआ। यह केवल सत्संग का प्रभाव है कि मैं मुनि की पदवी को प्राप्त हुआ।

पृष्ठ सं० ३५

पृथुराज समाना = महाराज पृथु ने भगवान से वर माँगा था कि मैं दो कानों से ईश्वर का यश हजार कानों के समान सुन सकूँ।

पृष्ठ सं० ३६

मग = मगध—बुद्ध की जन्म-भूमि होने कारण वैष्णव लोग मगध को बुरा समझते हैं। उन दिनों ब्राह्मण यज्ञों में पशुओं की बलि चढ़ाते थे। बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार कर पशु-बलि का विरोध किया। इस कारण बुद्ध के साथ ब्राह्मणों की नहीं पटती थी। गोस्वामीजी ने आगे चल कर अयोध्या काण्ड में भी लिखा है कि—"लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे।"

जनक वाटिका

पृष्ठ सं० ३७

प्रीति पुरातन—पूर्व जन्म की प्रीति जो विष्णु और लक्ष्मी में थी।

सुमिरि सीय नारद बचन""" पुनीत—एक बार सीताजी पार्वतीजी का पूजन करने के लिए जा रही थीं। रास्ते में नारदजी से भेंट हो गई। उन्होंने

पूछा "कहाँ जा रही हो।" सीता ने सहज उत्तर दिया कि "पार्वती का पूजन करने के लिए।" तब नारदजी बोले कि इसी मन्दिर के बगीचे में तुम्हें रामजी के दर्शन होंगे और वह ही तुम्हारे पति होंगे।

मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगञ्चल—सूर्यवंश में निमि नाम का एक राजा था। उसने एक बार वशिष्ठ जी से यज्ञ कराने की प्रार्थना की। वशिष्ठजी ने कहा कि अभी मुझे इन्द्र को यज्ञ कराना है, वहाँ से लौटकर तुमको यज्ञ करा सकूँगा। लेकिन राजा निमि ने वशिष्ठजी की प्रतीक्षा नहीं की और गौतम ऋषि को उपाध्याय बना कर यज्ञ आरम्भ कर दिया। वशिष्ठजी ने लौटकर जब यह दृश्य देखा तो वह क्रोधित हो उठे और उन्होंने राजा निमि को शाप दिया कि तेरा शरीर चेतना हीन हो जायगा। तब निमि ने भी उनको शाप दिया कि तुम भी विदेह हो जाओगे। ब्रह्मा की कृपा से वशिष्ठ जी ने फिर शरीर पाया और निमि ने देवताओं की कृपा से वायु रूप होकर प्राणियों के नेत्रों पर निवास किया। इसी कारण प्राणियों के नेत्र विश्राम के लिए बराबर बन्द होने लगे। इस चौपाई का आशय यह है कि निमि राजा जनक के पूर्वज थे। वे सीता राम का मिलन देख सकुचाकर वहाँ से हट गए जिससे नेत्रों ने पलक मारना छोड़ दिया, क्योंकि उन्हें अब विश्राम की आवश्यकता ही न रह गई थी।

पृष्ठ सं० ३८

मङ्गन लहहिं न जिनके नाहीं--राजा नल बड़े दानी थे। वह किसी को 'ना' नहीं करते थे। याचकगण इस बात पर बराबर सन्देह किया करते थे कि क्या विद्याध्ययन के समय राजा नल ने 'न' अक्षर नहीं पढ़ा था अथवा वह उसको पढ़कर भूल गये थे। 'नैषधचरित' में राजा नल के विषय में लिखा है कि—

> नाधरायि पठता किमपाठि
> विस्मृतः किमयवा पठितोऽपि,
> इत्यमर्थिचय संशयदोला—
> खेलनं खलु चकार नकारः।

गोस्वामीजी ने यही बात राम और उनके पिता के विषय में कह दी है।

सीता स्वयंवर

पृष्ठ सं० ४०

कहँ कुंभज कहँ सिन्धु अपारा। एक बार समुद्र एक पक्षी के तीन बच्चे बहा ले गया। तब पक्षी ने प्रतिज्ञा की कि समुद्र को सुखा दूँगा। वह अपनी चोंच से पानी भर-भर कर बाहर फेंकने लगा। एक दिन अगस्त्यजी वहाँ आये और उन्होंने उस पक्षी से पानी फेंकने का कारण पूछा। उसने सब बात बतादी। उसकी बात सुनकर अगस्त्यजी बोले कि मैं समुद्र को दण्ड दूँगा। फिर मुनि समुद्र के किनारे पूजन करने के लिए गए। संयोग की बात समुद्र उनकी पूजा की सामग्री को भी बहा ले गया। इस पर उन्होंने तीन बार आचमन करके समुद्र को सुखा दिया। कुछ समय के बाद जब देवताओं ने उनकी बहुत खुशामद की, तब उन्होंने उसको फिर भर दिया।

अयोध्या काण्ड

कैकेयी-मन्थरा संवाद

पृष्ठ सं० ४४

मन्थरा नाम की दासी कैकेयी के साथ मायके से आई थी और कैकेयी के साथ जन्म से ही रही थी।

पृष्ठ सं० ४५

अवध साढ़साती जनु बोली। शनि एक राशि पर ढाई वर्ष रहता है। जब वह अपनी राशि से बारहवाँ, जन्म की राशि का और दूसरा होकर साढ़े सात वर्ष रहता है, तब उसे 'साढ़ेसाती' कहते हैं और उसका फल बहुत बुरा होता है।

पृष्ठ सं० ४६

कद्रू बिनतहि दीन दुख। कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ थीं — उनके नाम थे कद्रू और विनता। कद्रू सर्पों की और विनता पक्षियों की माता थी। एक दिन की बात, कद्रू ने विनता से पूछा कि सूर्य के घोड़ों की पूँछ का रंग कैसा होता है। उसने कहा 'गोरा'। परन्तु कद्रू ने कहा कि 'काला'। दोनों में बहुत देर तक विवाद होता रहा। अन्त में यह तय किया कि दोनों चलकर स्वयं देखें कि वास्तव में घोड़ों की पूँछ का रंग कैसा है। और यह शर्त तय हुई कि

जिसकी बात गलत निकले वह आजन्म दूसरी की दासी होकर रहे।

कद्रू को जिताने के लिए उसके पुत्र सर्प जाकर घोड़ों की पूँछ से लिपट गए जिससे उसका रंग काला प्रतीत होने लगा। कद्रू ने विनता को दिखाया कि पूँछ का रंग काला है—गोरा नहीं। कद्रू की जीत हुई और विनता की हार। शर्त के अनुसार विनता कद्रू की दासी होकर रहने लगी।

एक दिन गरुड़ ने अपनी माता विनता से उसके दुःख का कारण पूछा। विनता ने सब कथा कह सुनाई। उसकी करुण-कथा सुनकर गरुड़ बहुत दुःखी हुए। वह भगवान के पास गए और उन्होंने भगवान से यह वर माँगा कि मैं सर्पों का भक्षण करूँ पर मुझे विष न व्यापे। भगवान ने गरुड़ को सहर्ष यह वरदान दे दिया। उस दिन से गरुड़ सर्पों को खाने लगे। तब कद्रू ने घबड़ा कर विनता से अपना अपराध क्षमा करा लिया।

कैकेयी की माँग

पृष्ठ संख्या ४८

शिवि-दधीचि-बलि जो कछु भाषा। तनु धन तजेउ वचन प्रण राखा।

(क) राजा शिवि ने एक बार निरानवे यज्ञ का करना आरम्भ किया। इन्द्र सशंकित हुआ। वह स्वयं बाज बना और अग्नि को उसने कबूतर बनाया। यह कबूतर पर झपटता हुआ राजा शिवि की यज्ञशाला में पहुँचा। राजा ने कबूतर की रक्षा करने की ठानी और उसको छिपा लिया। तब बाज के मेर

अपना दुःख रोया। भगवान ने कहा कि नैमिषारण्य में महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं, उनकी हड्डी से इसकी मृत्यु सम्भव है। तब इन्द्र ने ऋषि के पास जाकर उनकी हड्डी माँगी। यह सुन कर ऋषि दधीचि ने अपने प्राण त्याग दिए। उनकी हड्डी का वज्र बनाकर इन्द्र ने दैत्य का नाश किया।

(ग) एक बार राजा बलि ने इन्द्रासन की प्राप्ति के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया। इन्द्र घबड़ाकर भगवान विष्णु के पास गया। बलि अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। भगवान ने एक बौने ब्राह्मण का रूप ("वामन" अवतार) धारण किया और बलि के द्वार पर भिक्षा माँगने पहुँचे। बलि ने जब इनसे माँगने को कहा तो उन्होंने अपने रहने के लिए तीन पग धरती माँगी। बलि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। बस, भगवान ने एक पग में मृत्युलोक नाप लिया। और दूसरे में स्वर्गलोक नाप डाला। फिर बोले कि तीसरा पग कहाँ रखूँ ? 'मेरे सिर पर" राजा बलि ने कहा। निदान, भगवान ने तीसरा पग उनके सिर पर रख उन्हें पाताल भेज दिया और इन्द्र की रक्षा की।

उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में व्यक्ति ने जीवन एवं धन सब कुछ देकर अपने वचन का पालन किया था।

चित्रकूट पर भरत आगमन

पृष्ठ संख्या ४६

शशि गुरु-तिय-गामी नहुष, चढ़ेउ भूमि-सुर-यान।
लोक वेद तें विमुख भा अधम को वेणु समान॥

(क) चंद्रमा के गुरु बृहस्पति थे। एक दिन चन्द्रमा ने अपने गुरु की पत्नी के साथ भोग किया। जब बुध पैदा हुआ और गुरु बृहस्पति उसका नामकरण करने लगे। तब चन्द्रमा ने कहा कि इस बालक का जन्म मुझसे हुआ है, इस कारण यह पुत्र मेरा है, इसको मुझे दे दो। विवाद के पश्चात् देवताओं ने बुध चन्द्रमा को ही दिला दिया था।

(ख) नहुष की कथा का उल्लेख अन्यत्र कर ही चुके हैं कि राजमद के वशीभूत होकर उसने ब्राह्मणों से अपनी पालकी उठवाई थी।

(ग) वेणु बाल्यकाल से ही उपद्रवी था। राज्य प्राप्त कर उसको बड़ा मद हो गया। उसने ढिंढोरा पिटवा दिया कि परमेश्वर के समान मेरा आदर करो

उस ने ब्राह्मण को न माना, मेरी आज्ञा को ही सर्वोपरि समझो। सब ऋषियों ने मिलकर इसको बहुतेरा समझाया, परन्तु वह नहीं माना। तब अन्त में ऋषियों ने क्रोध करके इसको शाप दिया और मार डाला।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में राज्यमद के वशीभूत होकर लोगों ने बड़े अनर्थ किये।

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।

(क) राजा सहस्त्रबाहु के एक हजार भुजायें थीं। एक बार जब वह वन में शिकार खेलने गए थे, तो उन्हें बड़े जोर की प्यास लगी। उन्होंने जल लाने के लिए एक दूत भेजा। दूत को कहीं भी जल नहीं मिला। तब उन्होंने जमदग्नि ऋषि के आश्रम में जाकर राजा के लिए जल माँगा। ऋषि ने कहा कि राजा को यहाँ लिवा लाओ, यहाँ आकर वह सेना सहित भोजन करें और जल पियें। राजा वहाँ पहुँचा। ऋषि ने कामधेनु की कृपा से उन सब का नाना प्रकार के भोजन द्वारा खूब सत्कार किया। उस चमत्कार-पूर्ण सत्कार को देख कर राजा को बहुत ही विस्मय हुआ। उसने ऋषि से से पूछा कि आप इस वन में हम सब का इतनी अच्छी तरह क्यों कर सत्कार कर सके हैं। ऋषि ने बता दिया कि यह सब कामधेनु की माया का फल है। राजा ने ऋषि से कहा कि वह गौ हमें दे दें; ऋषि ने आनाकानी की। राजा मद में चूर था—उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि बलपूर्वक गौ को खोल कर ले चलो। सिपाही गौ को खोलकर ले जाने लगे, उसी समय गौ से म्लेच्छ उत्पन्न हुए और वे राजा के साथ युद्ध करने लगे। राजा ने क्रोध करके ऋषि का सिर काट डाला और उनकी पत्नी रेणुका को भी घायल कर दिया। तब गौ भाग कर इन्द्रलोक पहुँची। जब यह समाचार जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम को मिला तो वह आगबबूला हो गए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह

जाएँ। उन्होंने गुरु वशिष्ठ से कहा कि वह अपेक्षित यज्ञ करा के उन्हें सदेह स्वर्ग पहुँचा दें। वशिष्ठ जी ने यह करने को मना कर दिया।

राजा ने वशिष्ठजी के पुत्रों से वैसा करने को कहा। उन्होंने भी मना कर दिया। तब राजा विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र का वशिष्ठ से वैर था। उन्होंने राजा की प्रार्थना तत्काल स्वीकार करली और यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। वशिष्ठादि ने यज्ञ में विघ्न उपस्थित किये। विश्वामित्र ने तप के प्रभाव से नये ऋषि और देवता रच डाले और यज्ञ पूरा करके त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेज दिया। परन्तु स्वर्ग के देवता तो वशिष्ठजी के पक्ष में थे। उन्होंने त्रिशंकु को स्वर्ग से नीचे ढकेल दिया। त्रिशंकु को नीचे आते देख कर विश्वामित्र ने तप के प्रभाव से उन्हें नीचे नहीं गिरने दिया और वहीं बीच में ही रोक दिया। कहते हैं तब से लेकर आज तक त्रिशंकु वहीं, आकाश और पृथ्वी के बीच में ही, लटके हुए हैं।

पृष्ठ संख्या ४०

प्रगट करौं रिस पाछिल आजू। अयोध्या से वन के लिये रवाना होते समय लक्ष्मण ने बहुत क्रोध किया था। उसी का हवाला यहाँ दिया गया है।

लक्ष्मण ने राम से कहा था कि, "राजा की तो बुढ़ापे में बुद्धि मारी गई है। यह भी कोई बात हुई कि एक स्त्री के कहने से वह आपको वन भेज रहे हैं और आप उस आज्ञा का पालन करके राजश्री को त्याग रहे हैं। विषयों ने पिता को जीत लिया है, वह काम के वश में तथा स्त्री की नाक पकड़ी लुगी बने हुए हैं। हे भ्राता! जब तक कोई इस बात को जाने, तब तक मेरी सहायता से आप इस राज्य को अपने अधीन कर लीजिए। हमारे पिताजी को कैकेयी ने उभाड़ा है। यदि वह शत्रु पक्ष में मिलें, तो उनको कैद कर लिया जाये अथवा मार डालना चाहिए। राजा किस न्याय से आपका राज्य कैकेयी को देना चाहते हैं? वृद्ध पिताजी लड़कपन कर रहे हैं और इस बुढ़ापे में अपने को निंदित बना रहे हैं, उनको मैं अभी ठीक कर दूँगा।"

परन्तु राम के समझाने पर वह मान गये थे। इस दबे हुए क्रोध को वह अब कार्यान्वित करना चाहते हैं।

तथा वेद-शास्त्र को मत मानो, मेरी आज्ञा को ही सर्वोपरि समझो। सब ऋषियों ने मिलकर इसको बहुतेरा समझाया, परन्तु वह नहीं माना। तब अन्त में ऋषियों ने क्रोध करके इसको शाप दिया और मार डाला।

उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में राजमद के वशीभूत होकर लोगों ने बड़े अनर्थ किये।

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजपद दीन्ह कलंकू।

(क) राजा सहस्त्रबाहु के एक हजार भुजायें थीं। एक बार जब वह वन में शिकार खेलने गए थे, तो उन्हें बड़े जोर की प्यास लगी। उन्होंने जल लाने के लिए एक दूत भेजा। दूत को कहीं भी जल नहीं मिला। तब उन्होंने जमदग्नि ऋषि के आश्रम में जाकर राजा के लिए जल माँगा। ऋषि ने कहा कि राजा को यहाँ लिवा लाओ, यहाँ आकर वह सेना सहित भोजन करें और जल पियें। राजा वहाँ पहुँचा। ऋषि ने कामधेनु की कृपा से उन सब का नाना प्रकार के भोजन द्वारा खूब सत्कार किया। उस चमत्कार-पूर्ण सत्कार को देख कर राजा को बहुत ही विस्मय हुआ। उसने ऋषि से से पूछा कि आप इस वन में हम सब का इतनी अच्छी तरह क्यों कर सत्कार कर सके हैं। ऋषि ने बता दिया कि यह सब कामधेनु की माया का फल है। राजा ने ऋषि से कहा कि वह गौ उसे दे दें; ऋषि ने आनाकानी की। राजा मद में चूर था—उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि बलपूर्वक गौ को खोल कर ले चलो। सिपाही गौ को खोलकर ले जाने लगे, उसी समय गौ से म्लेच्छ उत्पन्न हुए और वे राजा के साथ युद्ध करने लगे। राजा ने क्रोध करके ऋषि का सिर काट डाला और उनकी पत्नी रेणुका को भी घायल कर दिया। तब गौ भाग कर इन्द्रलोक पहुँची। जब यह समाचार जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम को मिला तो वह आगबबूला हो गए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह सहस्त्रबाहु को मारकर पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन कर देंगे। उन्होंने सहस्त्रबाहु का वध किया तथा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय रहित किया।

(ख) इन्द्र ने राजमद में गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का सतीत्व भंग किया था।

(ग) एक बार राजा त्रिशंकु को यह विचार आया कि वह सदेह स्वर्ग

जाएँ। उन्होंने गुरु वशिष्ठ से कहा कि वह अपेक्षित यज्ञ करा के उन्हें सदेह स्वर्ग पहुँचा दे। वशिष्ठ जी ने यह करने को मना कर दिया।

राजा ने वशिष्ठजी के पुत्रों से वैसा करने को कहा। उन्होंने भी मना कर दिया। तब राजा विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र का वशिष्ठ से वैर था। उन्होंने राजा की प्रार्थना तत्काल स्वीकार करली और यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। वशिष्ठादि ने यज्ञ में विघ्न उपस्थित किये। विश्वामित्र ने तप के प्रभाव से नये ऋषि और देवता रच डाले और यज्ञ पूरा करके त्रिशङ्कु को सदेह स्वर्ग भेज दिया। परन्तु स्वर्ग के देवता तो वशिष्ठजी के पक्ष में थे। उन्होंने त्रिशङ्कु को स्वर्ग से नीचे ढकेल दिया। त्रिशङ्कु का नीचे आते देख कर विश्वामित्र ने तप के प्रभाव से उन्हें नीचे नहीं गिरने दिया और वहीं बीच में ही रोक दिया। कहते हैं तब से लेकर आज तक त्रिशङ्कु वहीं, आकाश और पृथ्वी के बीच में ही, लटके हुए हैं।

पृष्ठ संख्या ५०

प्रगट करौं रिस पाछिल आजू। अयोध्या से वन के लिये रवाना होते समय लक्ष्मण ने बहुत क्रोध किया था। उसी का हवाला यहाँ दिया गया है।

लक्ष्मण ने राम से कहा था कि, "राजा की तो बुढ़ापे में बुद्धि मारी गई है। यह भी कोई बात हुई कि एक स्त्री के कहने से वह आपको वन भेज रहे है और आप उस आज्ञा का पालन करके राज-श्री को त्याग रहे हैं। विषयों ने पिता को जीत लिया है, वह काम के वश में तथा स्त्री की कान पकड़ी छेरी बने हुए हैं। हे भ्राता! जब तक कोई इस बात को जाने, तब तक मेरी सहायता से आप इस राज्य को अपने अधीन कर लीजिए। हमारे पिताजी को कैकेयी ने उभाड़ा है। यदि वह शत्रु पक्ष में मिलें, तो उनको कैद कर लिया जाये अथवा मार डालना चाहिए। राजा किस न्याय से आपका राज्य कैकेयी को देना चाहते हैं? वृद्ध पिताजी लड़कपन कर रहे हैं और इस बुढ़ापे में अपने को निंदित बना रहे हैं, उनको मैं अभी ठीक कर दूँगा।"

परन्तु राम के समझाने पर वह मान गये थे। इस दबे हुए क्रोध को वह अब कार्यान्वित करना चाहते हैं।

अरण्य काण्ड

सीताहरण

पृष्ठ संख्या ४४

को मैनाक कि लागति होई। मैनाक का स्वामी समुद्र है जिसे राघव ने तथा अन्य दैत्यों ने मिलकर मथ डाला था और गरुड़ के स्वामी भगवान हैं जिनसे रावण का हमेशा विरोध रहता था।

किष्किन्धा काण्ड

वर्षा और शरद ऋतु वर्णन

पृष्ठ संख्या ५३

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभक्ति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥

राजा अपना प्रबन्ध देखने के लिये इलाकों में दौरा करते हैं।
तपस्वी तीर्थ-यात्रा के लिए देशाटन करते हैं।
व्यापारी सामान खरीदने और बेचने को देशान्तर जाते हैं।
भिखारी भीख माँगने के लिये बाहर जाते हैं।
चार आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास।

सुन्दर काण्ड

रावण शुक संवाद और सेतुबन्ध

पृष्ठ संख्या ५८

करि प्रणाम निज कथा सुनाई। शुक ने वन में तप किया और राक्षसों के विनाश के लिए अनेक यज्ञ किये। एक दिन इनके आश्रम में अगस्त्यजी पहुँचे। जब वह स्नान [illegible] करने गये तब शुक उनके लिए भोजन बनाने लगा। [illegible] बीच में [illegible] राक्षस अगस्त्य जी का वेश धारण कर आया [illegible] माँस अवश्य बनाना। शुक ने माँस तैयार करा [illegible] को बैठे तब वही राक्षस स्त्री का रूप धारण [illegible] अगस्त्य ऋषि ने शुक को शाप दिया कि [illegible] निवेदन किया कि उसका कुछ

❀ कवितावली ❀

अयोध्या काण्ड

पृष्ठ संख्या ७७ -

छन्द संख्या २ : अजामिल—अजामिल नाम का एक बहुत ही पापी व्यक्ति था। उसके पुत्र का नाम नारायण था। मृत्यु के समय जब यम के दूत उसको लेने आए, उन्हें देखकर वह घबड़ा गया। घबड़ाकर उसने अपने पुत्र नारायण को आवाज़ दी। 'नारायण' का उच्चारण होते ही यम के दूत भाग खड़े हुए और अजामिल को स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

प्रगटी तटिनी—गंगाजी भगवान् विष्णु के चरणों से प्रकट हुई थीं।

छन्द स० ३ : परसें पग धूरि = राम के चरण की रज के स्पर्श से शिला के रूप में पड़ी हुई अहिल्या का उद्धार हुआ था और वह स्वर्ग पहुँच गई थी।

छन्द स० ४ : में 'पाहन तें' में भी इसी ओर संकेत है तथा छन्द स० ५ में "गौतम की घरनी " " " तरेगी" में भी वही बात कही गई है।

अरण्य काण्ड

पृ॰ठ सं० ७८

छन्द स० १ : हेमकुरंग = मारीच सोने का हिरन बन आया था। सीताजी उस पर मोहित हो गई, उन्होंने इच्छा प्रकट की कि राम उसकी मृगछाला लाकर दें। निदान, राम उसका शिकार करने के लिए चले गए थे।

उत्तर काण्ड

पृष्ठ स० ८४

छन्द स० २ : पावक की कलुपाई। रावण-वध के पश्चात् लक्ष्मण तथा विभीषण आदिक सीताजी को अशोक वाटिका से लेकर राम के पास आए। राम ने कहा कि ग्रहण करने के पहले सीता के धर्म की परीक्षा होनी चाहिए। लक्ष्मण ने चिता बनाई और धर्म को साक्षी करके सीता ने उसमें प्रवेश किया। स्वयं अग्निदेव सीता को लेकर प्रकट हुए और उन्होंने राम को सीता सौंप दी। इस अग्नि-परीक्षा के बाद ही राम ने सीता जैसी साध्वी को अपनाया था।

राज्य-सिंहासन पर बैठने के कुछ समय पश्चात् राम ने यह जानना चाहा कि प्रजाजन उनके विषय में कैसी चर्चाएँ करते हैं। एक दिन एक दूत ने आकर यह खबर दी कि एक धोबी अपनी पत्नी से कह रहा था कि राम ने रावण के घर में रही हुई सीता को भले ही ग्रहण कर लिया हो, परन्तु मैं तुझे अपने घर में नहीं घुसने दूँगा, क्योंकि तू रात भर घर के बाहर रह कर आई है। इस बात को सुनकर राम को बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने सोचा कि प्रजाजन का उनके आचरण में शतप्रतिशत विश्वास नहीं है। निदान, उन्होंने सीता त्याग का संकल्प किया और लक्ष्मण को आज्ञा दी कि वह सीता को वन में छोड़ आएँ।

धर्म-धुरन्धर बंधु तज्यो—यह कथा वाल्मीकि रामायण में आती है। भगवान राम का यह नियम था कि जब वह किसी के साथ मन्त्रणा करते थे उस समय लक्ष्मण पहरे पर रहते थे और उन्हें यह आज्ञा थी कि वह किसी को अन्दर न आने दें। एक बार भृगु ऋषि आए और वह मना करने पर भी अन्दर चले गए। राम ने इसको आज्ञा का उल्लंघन समझा और लक्ष्मण का त्याग कर दिया। भ्रातृ-सेवी लक्ष्मण ने दुःखी होकर अपने प्राण त्याग दिए।

कीस = सुग्रीव। निसाचर = विभीषण।

छन्द सं० ५ : इठ चातकु = चातक केवल स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले जल को ग्रहण करता है।

छन्द सं० ७ : हरिचन्दु-से साँचे = राजा हरिश्चन्द्र सत्ययुग में हुए थे। एक बार इन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य गुरु विश्वामित्र को दान कर दिया। ऋषि ने गुरुदक्षिणा माँगी। उसके लिए इन्होंने अपनी पत्नी तथा अपने आपको बेच डाला था। पत्नी के साथ इनका पुत्र रोहिताश्व भी चला गया था। राजा स्वयं एक चाण्डाल के हाथों बिके थे। श्मशान पर आने वाले मुर्दों से कफन का आधा भाग लेने का काम इन्हें सौंपा गया था।

संयोग की बात, रोहिताश्व को सर्प ने काट लिया और वह मर गया। इनकी पत्नी उसके संस्कार के लिए श्मशान पहुँची। बेचारी दासी के पास कफन कहाँ से आता! परन्तु सत्यवादी हरिश्चन्द्र भी बिना आधा कफन लिए क्यों मानते? निदान, इनकी पत्नी अपनी आधी धोती फाड़कर इन्हें देने लगी।

उस धनुष की गरुआई पर बड़ा गर्व था। उनका विश्वास था कि उस धनु को कोई नहीं तोड़ सकता था। उस धनुष को तोड़ कर राम ने मानों परशुराम गर्व का हरण किया।

पृष्ठ संख्या १०४

छन्द संख्या २६ : मारीच, सुबाहु और ताड़का की कथा अन्यत्र लिए चुके हैं।

अयोध्या काण्ड

पृष्ठ संख्या १०८

छन्द सं० ११ : अद्भुत त्रयी = वशीकरण, आकर्षण तथा मोहिनी— ये तीन मन्त्र।

पृष्ठ संख्या ११३

छन्द संख्या २२ : आदि बराह·········दमन धरि धरनी। हिरण्याक्ष पृथ्वी को चटाई की तरह लपेट कर पाताल में ले गया था। भगवान ने वाराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष का वध किया, और पृथ्वी को दाढ़ पर रखकर ऊपर लाये, और इस प्रकार वाराह अवतार ने पृथ्वी का उद्धार किया था।

किष्किन्धा काण्ड

पृष्ठ संख्या १२६

छन्द स० १ : भूषन-बसन—रावण जब सीता को हर कर ले जा रहा था, तब सीताजी ने बन्दरों को देख कर अपने कुछ गहने नीचे फेंक दिए थे ताकि रघुनाथजी को मालूम हो सके कि सीता इस मार्ग से गई हैं। राम से भेंट होने पर सुग्रीव ने उन्हें वे आभूषण दिखाए थे। उन्हें देखकर राम का हृदय भर आया था।

सुन्दर काण्ड

* राम के ऊपर कोई विपत्ति थी, तभी तो वे लक्ष्मण को पुकार रहे थे। लक्ष्मण ने उन्हें बहुतेरा समझाया कि राम अजेय हैं, उन पर कोई विपत्ति नहीं आ सकती है। परन्तु सीता ने उनका विश्वास नहीं किया, बल्कि उल्टी-सीधी अनेक बातें सुनाईं। निदान, लक्ष्मण उन्हें अकेला छोड़ कर चले गए और सीता का हरण सम्भव हुआ। सीता को उसी घटना का स्मरण हो रहा है। वह सोचती हैं कि मेरे कटु वचनों को सुनकर लक्ष्मण अवश्य ही मुझसे नाराज़ हो गए होंगे। उन्होंने मुझे क्षमा किया है या नहीं ?

पृष्ठ सं० १२८

छंद सं॰ ४ : चित्रकूट-कथा = जब राम चित्रकूट में थे, तब एक बार इन्द्र का पुत्र जयन्त कौआ बन कर आया था और उसने सीता के स्तन में चोंच मारी थी। राम ने उसकी एक आँख फोड़ दी थी। इस घटना को केवल राम और सीता ही जानते थे। इस घटना की ओर संकेत करके हनुमानजी यह बताना चाहते हैं कि वह राम के ही भेजे हुए हैं तथा उनके अत्यन्त निकट हैं।

पृष्ठ सं० १३६

छन्द स० २४ : सबरी, गीध तथा कपिराज = इन सबके उद्धार की कथाएँ अन्यत्र लिखी जा चुकी हैं।

लंकाकाण्ड

पृष्ठ सं० १४३

छन्द स० ८ : कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुण्ड। कहते हैं कि गरुड़ों ने देवताओं से जलकर अमृत के कुण्ड को पाताल में फेंक दिया था। वहाँ नाग अपने फन फैलाकर उसकी रक्षा करते थे।

विनता की आज्ञा पाकर उसके पुत्र गरुड़ नागों को मारकर उस अमृत कुण्ड को ले आए थे। हनुमानजी भी यही कहना चाहते हैं कि वह भी गरुड़ के समान बली हैं और अमृत को लाने में समर्थ हैं—वह कहीं भी हो और किसी के द्वारा भी रक्षित क्यों न हो।

उत्तरकाण्ड

पृष्ठ सं० १५२

छन्द सं० ७ : सकल रितुन्ह = साल में छ ऋतुएँ मानी गई हैं। उनका ब्यौरा इस प्रकार है :—

चैत्र और बैशाख = वसन्त ऋतु।
जेठ और आषाढ़ = ग्रीष्म ऋतु।
सावन और भादों = पावस ऋतु।
क्वार और कार्तिक = शरद ऋतु।
अगहन और पूस = हेमन्त ऋतु।
माघ और फाल्गुन = शिशिर ऋतु।

❀ विनय पत्रिका ❀

पृष्ठ सख्या १५७

छन्द सख्या १ : बूड्यो मृग वारि खायो जेवरी को साँप रे। रेगिस्तान में जानवर को पानी का भ्रम होजाता है तथा अँधेरे में आदमी प्रायः रस्सी कोसाँप समझ लेता है। इन धोखों के फलस्वरूप दोनों के प्राण सकट में पड़ जाते हैं। रेगिस्तान की अत्यधिक गर्मी के कारण, वहाँ की हवा की विभिन्न तहों का विभिन्न तापक्रम हो जाता है। फलतः रेत में पेड़ों की परछाई दिखाई देने लगती है। प्यासा प्राणी समझता है कि जहाँ पेड़ की परछाई है, वहाँ पानी होगा। वह उस ओर दौड़ कर पहुँचता है और पानी न पाकर निराश होकर गिर पड़ता है।

तिहुँ ताप = तीन ताप = आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक।

छन्द सख्या २ : जिगुरे ससि रवि, मन-नयननि = कहते हैं कि चन्द्रमा भगवान के मन से तथा सूर्य उनके नेत्र से उत्पन्न हुए हैं। वे भगवान से अलग हो गए हैं—अतः चारों ओर दिन और रात घूमते रहते हैं, उन्हें कभी राहु ग्रसित करता है। तथा अन्य प्रकार से वे कष्ट उठाते रहते हैं।

पृष्ठ संख्या १५६ छन्द सख्या ७ : ताप-त्रय = आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक।

पृष्ठ संख्या १६०

छन्द संख्या १० : व्याध = बाल्मीकि। इनके उद्धार की कथा लिख चुके हैं।

गनिका = यह एक वेश्या थी। वह अपने तोते को राम-राम पढ़ा रही थी। बस, उसके सब पाप धुल गए और उसका उद्धार हो गया।

गज = गज-ग्राह की कथा लोक-विदित है। एक मगर एक हाथी का पैर पकड़ कर उसे पानी में खींच ले गया। हाथी ने छूटने की बहुतेरी कोशिश की, परन्तु उसकी एक न चली। जब वह प्रायः डूब गया, उसकी सूँड़ का थोड़ा सा भाग ही पानी के ऊपर दिखाई देता था—तब वह घबड़ाकर भगवान का नाम लेकर चिल्लाया। भगवान उसका उद्धार करने के लिए पैदल ही दौड़ पड़े और उन्होंने वहाँ समय से पहुँचकर गज का ग्राह से उद्धार किया।

अजामिल की कहानी हम लिख ही चुके हैं। अपने पुत्र नारायण का नाम लेते ही उसके समस्त कलुष धुल गए थे।

पृष्ठ सं० १६२

छन्द सं० १४ : सहसबाहु तथा दसबदन (रावण) की कथाएँ पाठक जानते ही हैं।

छन्द सं० १५ : द्वैत मूल = अपने-पराये का भेद करने के कारण। अपने आपको ब्रह्म से पृथक् समझने के कारण।

पृष्ठ सं० १६३

छन्द सं० १६ : पूतना = वह कंस की बुआ थी। वह अपने स्तनों में विष लगा कर कृष्ण के पास पहुँची। उसका विचार था कि जैसे ही कृष्ण उसका दूध पियेंगे वैसे ही विष के प्रभाव से मर जायेंगे। परन्तु हुआ उल्टा। कृष्ण ने स्तन पीते में ही उसके प्राण हरण कर लिए।

सिसुपाल = शिशुपाल श्रीकृष्ण की बुआ का लड़का था। जन्म के समय उसके चार भुजायें थी। श्रीकृष्ण ने जैसे ही उसको गोदी में लिया, वैसे ही उसकी दो भुजायें गिर पड़ीं। उसकी माता ने श्रीकृष्ण से कहा कि "इसकी यह बात है कि जिसकी गोद में जाते ही इसकी दो भुजायें गिर पड़ेंगी, उसी के हाथों इसकी मृत्यु होगी। सो बेटा! क्या तुम्हीं अपने भाई को मारोगे!" श्रीकृष्ण ने कहा कि "होनी तो होकर ही रहेगी, परन्तु मैं यह वचन देता हूँ कि मैं इसके १०० अपराधों को क्षमा कर दूँगा।"

युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया और सर्वप्रथम कृष्ण के पैर पखारे शिशुपाल को यह बात बहुत बुरी लगी। वह कृष्ण का वैरी तो पहले से ही था, क्योंकि श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लाये थे। उसने श्रीकृष्ण को गालियाँ देना शुरू किया। श्रीकृष्ण बैठे-बैठे चुपचाप सुनते रहे। जैसे ही उसने एक-सौ-एकवीं गाली दी, वैसे ही उनके चक्र-सुदर्शन ने शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया।

व्याध—मारीच को मारने वाले राम।

पृष्ठ सं० १६४

छन्द स० २० : ज्यों कुरग""""""नहि पायो। काले हिरण की नाभि में कस्तूरी का नामा होता है। उसकी मदमाती गंध उड़ती है। हिरण समझता है कि कहीं बाहर के किसी लता-वल्लरी से यह गन्ध आ रही है। उसके पाने करने के लिए वह पागल हुआ चारों ओर दौड़ता फिरता है।

पृष्ठ सं० १६५

पुराननि = इनकी सख्या १८ है।

पृष्ठ स० १६६

छन्द सं० २२ : षट-मत = छ शास्त्र = छ दर्शन—वेदान्त योग, साँख्य मीमांसा, न्याय और वैशेषिक।

पृष्ठ सं १६७

छन्द स० २५ : गीध = जटायु। सिला = अहिल्या तथा सबरी = शबरी नाम की भीलनी। इनके उद्धार की कथाएँ अन्यत्र लिख चुके हैं।

पृष्ठ स १६६

छन्द सं० २६ : तिजरा को सो टोटक = मलेरिया बुखार को तिजारा कहते हैं—यह ज्वर एक दिन छोड़ कर (तीसरे दिन) आता है। इसे छुड़ाने के लिए हमारे देश में अनेक प्रकार के टोटके किए जाते हैं। कोई चौराहे पर दीपक रखते हैं, कोई पुतला बनाकर रखते हैं, कोई पेड़ में लोग टाँग आते हैं—आदि। जो भी हो, इन सबकी एक सामान्य विशेषता है—लौटकर इनकी ओर नहीं देखा जाता है। तात्पर्य यह है कि ऐसा छोड़ा कि फिर लौट कर देखा भी नहीं।